
Durga Sah Municipal Library
NAINI TAL
दुर्गासाह म्युनिसिपल पुस्तकालय
नैनीताल
Class no. 891.7
Book no. R802K
Reg no. 4621

खाट पर हजामत

[हास्य-व्यंग्य निबन्ध-संग्रह]

लेखक

रोशनलाल सुरीरवाला

एम. ए., डिप. एल. एस-सी.

प्रकाशक

हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली-६

मूल्य	:	चार रुपये सैंतीस नये पैसे (४·३७)
प्रथम संस्करण	:	अप्रैल, १९५९
प्रकाशक	:	हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली-६
मुद्रक	:	हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली

आचार्य मुरारीलाल जी

को

सादर समर्पित

जिनके निकट सम्पर्क में रहने पर भी गर्दन
उठा, पूर्ण वृत्ताकार मुख से कभी.
ठहाके न लगा सका

सवा पृष्ठ

'दो शब्द' लिखकर कई पृष्ठों का झूठ प्रायः लेखक बोलते हैं। किन्तु मैं ऐसा नहीं करूंगा। इन्टरव्यू में कन्या-प्रार्थी के उत्तरों के समान सटीक सवा पृष्ठ लिखूंगा।

वाद्य-यन्त्रों में जो महत्त्व सरोज का है, अथवा विवाह में जो महत्व लड़की की गोद का है वही महत्व जीवन-दिनचर्या में आमोद-प्रमोद और विनोद का है। जिस प्रकार बिना ताश जुआरी का दिन नीरस होता है; जिस प्रकार बिना सास के स्वसुराल-निवास स्नेह-हीन होता है या जिस प्रकार बिना रास कृष्ण-लीला ही व्यर्थ होती है उसी प्रकार बिना हास के जीवन भी मरुस्थल या श्मशान प्रतीत होता है। बिना संग सुरा-पान अपराध है, बिना भंग होली मनाना बेमजा है, बिना गंग-स्नान स्नान नहीं है, वैसे ही बिना व्यंग्य सम्पूर्ण जीवन-गोष्ठी मूर्ति-सी निश्चल हो उठेगी।

जिस प्रकार बर्बादी की जड़ फल्लास है, धर्म की जड़ उपवास है उसी प्रकार जीवन की जड़ हास है।. मनहूस व्यक्ति को कोई पास भी नहीं फटकने देता और बीरबल को अकबर की बगल में स्थान मिलता है। मनोवैज्ञानिक हास के महत्त्व से परिचित हैं। मौत की अवहेलना करने की भी शक्ति हास में होती है। बड़े-बड़े महापुरुष, जिनका स्वभाव गंभीर होता है, हास्य विनोद के गुण से रहित नहीं होते। हास्य रस किसी भी अन्य रस को अधिक प्रभावशाली बना देता है। हास्य-व्यंग्य के महत्त्व में कुछ और लिखना उसका अपमान करना है।

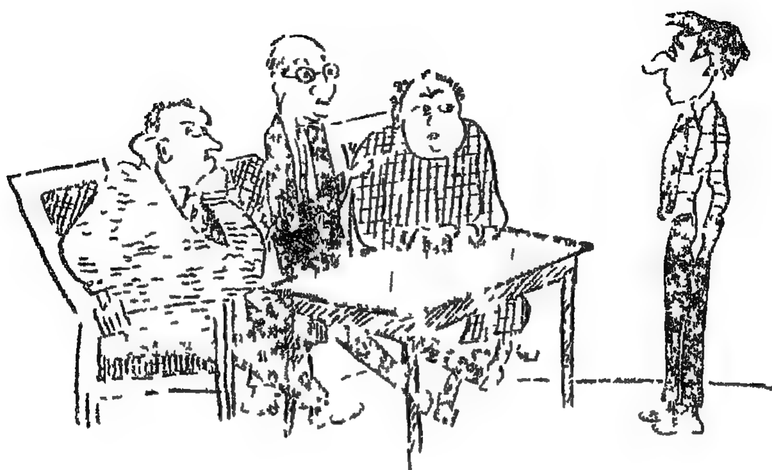
कहते हैं जिस प्रकार रेगिस्तान से ऊँट अलग नहीं हो सकता, और वकील से, झूठ अलग नहीं हो सकता, इसी प्रकार हास्य के सिपाही के लिये भी अश्लीलता, का सैल्यूट अनिवार्य है किन्तु मैंने इन निबन्धों को इसका अपवाद रखा है।

भरे पेट पर गुलाब-जामुन को रास्ता मिल जाता है। भरी भीड़ में कलक्टर साहब को भी स्थान मिल जाता है। वैसे ही अगर किसी भी मूड में बैठे पाठक को मेरी यह पुस्तक पसन्द आई तो मैं दस वर्ष के कुछ क्षणों के पारिश्रमिक को सफल समझूँगा।

बारहसैनी कालेज
अलीगढ़

रोशनलाल सुरीरवाला

क्या कहाँ



इण्टरव्यू

मेरा विचार यह था कि जिस प्रकार किसी घर में घुसने के लिए दरवाजे रूपी छेद का मालूम होना, अरि-दल को परास्त करने के लिए उसके भेद का मालूम होना और किसी को सहानुभूति दिखाने के लिए अधरों पर खेद शब्द का होना आवश्यक है उसी प्रकार किसी नौकरी में प्रविष्ट होने के लिए 'इण्टरव्यू'–वेद के मण्डलों, सूक्तों और अध्याय-मन्त्रों का ज्ञान होना भी आवश्यक है। किन्तु उस दिन ज्यों ही एम० ए० की परीक्षा समाप्त हुई कि एक साथी छात्र बोला, "अभी वाइवा-वोसी होगी।"

"यह वाह-वाह सौगी क्या बला है ?" हमने पूछा।

"आमने सामने मोर्चा स्थापित होता है। प्रश्नों की रागों। इस चलती है और उत्तरों की ढाल के जोर आजमाये जाते हैं, के युग में भी ने समझाया। ली गई होगी।

यह दिन भी आया। जिस समय मेरा नाम पुकारा फिल्म के विषय में ध्यानमग्न था। कमरे में घुसकर सूरदास पर लिखी भूल गया। एक खाली कुर्सी पड़ी थी प्रप्प से

सामने ही तीन आत्माएँ सशरीर विराजमान थीं। बीच की आत्मा कुछ पतली और लम्बी थी। अन्य दो आत्माएँ मोटी और छोटी थीं; मानो डंडे के दोनों ओर दो गिल्लयाँ हों। बीच की आत्मा ने एक पुस्तक को उलटते-पलटते पूछा, "प्रसाद के इस नाटक का आधार क्या है ?"

मुझे क्रोध आ गया। प्रसाद ने गहन अध्ययन किया था और अतीत से चमकती कथानक-मणियाँ निकाली थीं। इसमें आधार क्या बताया जाता।

"मौडर्न फर्नीचर कम्पनी की बनी यह मेज", मैंने तपाक से हाथ उठा कर उत्तर दिया।

"यह अभिप्राय नहीं", बीच की आत्मा फिर बोली, "इसके पृष्ठों पर जो लिखा है, उसका आधार क्या है ?"

"कागज, स्याही, प्रेस......"

"यह नहीं", बीच की आत्मा ने मुझे बीच में ही टोका; "मेरा तात्पर्य यह है कि श्री प्रसाद ने किस-किस पुस्तक को पढ़कर ..."

"ओह !" मैं भी बीच में ही बोला, "आपका मतलब है किस-किस पुस्तक से नकल की है।"

"अच्छा छोड़िये", दाहिनी गिल्लीनुमा आत्मा बोली, "चन्द्रगुप्त नाटक का नायक कौन है ?"

"नाम से तो चन्द्रगुप्त स्पष्ट है ही। आप कहें तो चाणक्य को सिद्ध कर दूं;" मैं बोला।

वामपक्ष की दूसरी गिल्लीनुमा आत्मा क्रुद्ध हो गई, "कोई गलत ... सिद्ध की जा सकती है। क्या तुम यह सिद्ध कर सकते हो ...ाप हो ?"......उन्होंने पूछा।

...जिए, यह युग ही सिद्धीकरण युग है।" मैंने उत्साहपूर्वक ...वत परदारेषु"......के अनुसार मेरी पत्नी आपकी......"

"जाइये-जाइये" और बीच की कुतुबमीनार-आत्मा ...करने दिया।

मैं चला आया और मेरा पीछा करते द्वितीय श्रेणी के अंक भी।

सम्भवतः इस इण्टरव्यू को बिगाड़ने का दोषारम्भ मेरा था किंतु अन्य में मैं निर्दोष रहा और विवशतः मुझे सटीक उत्तर देने को बाध्य होना पड़ा।

उसके बाद मुझे नौकरी के लिए इण्टरव्यू देने पड़े। कुछ झाँकियाँ इस प्रकार हैं—

एक इण्टर कालेज की बात है। इण्टरव्यू के कमरे में सात-आठ सामाजिक प्राणी बैठे थे। उनके बीच का प्राणी एक आँख का जमींदार था। छूटते ही बोल पड़ा, "क्या सूरदास जी जन्म से अंधे थे ?"

एम० ए० में मेरा विशेष कवि सूरदास था। मैंने नम्रता से उत्तर दिया, "श्रीमान् ! बड़े-बड़े विद्वानों का मत इस विषय पर एक नहीं है। प्रमाण मिलते हैं कि वे जन्म से अंधे थे, किन्तु उन्होंने गृह-नक्षत्रों और रंग आदि का ऐसा अनुकूल वर्णन किया है कि कोई अंधा कर ही नहीं सकता। अतएव समझौते की दृष्टि से मेरा अभिमत है कि सूरदास जी एक आँख वाले थे।"

उत्तर सुनकर समदृष्टिकार महोदय की एकमात्र दृष्टि वक्र हो गई।

तभी दूसरे प्रश्नक ने प्रश्न किया, "सूरदास के अध्ययन में क्या विशेषता है ?"

सूरदास पर सैकड़ों पुस्तकें पढ़ी थीं, किन्तु इस प्रश्न का सीधा उत्तर क्या हुआ, यह कई क्षणों तक समझ में न आया। निदान कहना ही पड़ा, "कहा जाता है कि सूरदास जन्म के अंधे थे, किन्तु उनका ज्ञान ऐसा है कि उन्होंने अवश्य ही गहन अध्ययन किया होगा। इस दृष्टि से उनके अध्ययन में विशेषता यह है कि सूरदास के युग में भी अंधों के अध्ययन के लिए सांकेतिक लिपि खोज निकाली गई होगी। जिससे सूरदास······"

"यह अभिप्राय नहीं।" वही प्रश्नक बोले, "सूरदास पर लिखी पुस्तकों में आपने क्या विशेषता देखी ?"

मैं अब और भी चकराया। किताबों की विशेषता भला क्या थी ? प्रश्नक महोदय अपने प्रश्न को स्पष्ट नहीं कर पाये थे। क्योंकि मैंने सूरदास पर अँग्रेजी में कोई पुस्तक नहीं पढ़ी थी, अतः सोत्साह बोला—"हिन्दी की अन्य पुस्तकों की जो विशेषता है, वही विशेषता सूरदास जी पर लिखी पुस्तकों में थी। प्रत्येक पुस्तक में 'अशुद्धि-पत्र' थे और एक बार पलटने में ही उसकी जिल्द उखड़ जाती थी। मूल्य भी······"

'बस-बस रहने दीजिये। आप जा सकते हैं", किसी ने कहा और मैं चला गया।

एक दूसरे कालेज का इण्टरव्यू इस प्रकार था—

"आप बी० ए० सैकिण्ड क्लास हैं ?"

"जी, एम० ए० भी सैकिंड क्लास हूँ ?"

"बी० ए० में एक विषय आपका हिन्दी था ?"

"जी, और एक अर्थशास्त्र था, और एक संस्कृत भी।"

"पढ़ा सकते हो ?"

"लिखा भी सकता हूँ।"

"होशियार मालूम देते हो।"

"साहसी भी हूँ।"

"जवान हो।"

"स्वस्थ भी हूँ।"

"जा सकते हो, थके होगे।"

"जा रहा हूँ, भूखा भी तो हूँ।"

पर पेट का प्रबन्ध वहाँ नहीं हुआ और मैं लौट आया।

इससे भी बुरा अनुभव 'हरदुआगंज' ग्राम में हुआ। समय दिया था दस बजे सुबह। साढ़े नौ बजे पहुँचा। कालेज के फाटक पर ताला लगा था। मैंने सोचा कहीं एक दिन पहले तो नहीं आ गया, परन्तु तुरन्त ही दो साहेबान और मेरा विद्यार्थी जीवन का मित्र रणधीर उसी मन्तव्य से आये। सोचा, पहले पेट की आग बुझा आयें। बाजार

गये । लौटते वक्त ११ बजे थे । कालिज भाग कर पहुंचे, किन्तु वहाँ अभी ताला ही लगा था । अन्दाजन आधा घण्टे पश्चात् एक आदमी आया । नौकर मालूम देता था ।

हमने पूछा, "आज इण्टरव्यू है ?"

"सो का भई"

"१० बजे का टाइम दिया था, अब साढ़े ग्यारह बजे हैं ।"

"सो का भई ।"

"हम बाहर से आए हैं ।"

"सो का भई ।"

"तुम मूर्ख जान पड़ते हो", मैंने धैर्य खोकर कहा ।

"सो का भई ?" और वह निर्लिप्त भाव से अन्दर चला गया ।

ठीक दो घंटे बाद इण्टरव्यू की नौबत आई । सात-आठ आदमी थे । एक क्लर्क आकर क्रम से बैठाल गया । मैं अपने नम्बर पर साँस रोके बैठा था कि तभी अन्दर से गाने की आवाज आई । मेरा साथी रणधीरसिंह एम० ए० ऊँची मर्दानी आवाज में चीख रहा था, "सैयां तोरे कारन, औगन बन जाऊँगी ।"

जब वह बाहर आया तो पसीना पोंछ रहा था । मैंने पूछा, "यह क्या बदतमीजी थी ?"

"करता क्या न करता ? कम्बख्तों ने गवाकर देखा था", रणधीर सिंह ने कहा । "मैं कुछ और पूछना चाहता था किन्तु तभी मुझे क्लर्क अन्दर पकड़ ले गया ।"

"हूं" उन लोगों में से सात आठ ने हुंकारा-सा भरा, "तो तुम्हारा विशेष कवि सूरदास था ।"

"जी हाँ", मुझे उत्तर देते समय बड़ी प्रसन्नता हुई और मैं सूरदास के विषय में अर्जित ज्ञान को दुहराने लगा । तभी अप्रत्याशित गोली छूटी, "आप अभिनय भी जानते हैं ?"

"अभिनय", मैं चौंका, "क्या मतलब ?"

"देखिये, उनमें से एक ने स्पष्टीकरण किया, "प्रति छः माह में

हम एक नाटक करते हैं और अध्यापकों की लगभग आधी तनुख्वाह हम नाटकों में से निकाल लिया करते हैं। प्रायः 'सत्य हरिश्चन्द', 'ध्रुव-लीला' या 'अन्धी दुलहिन' खेलते हैं, आपको तारामती, शैव्या, ध्रुव की माँ सुरुचि, या अन्धी दुलहिन का पार्ट खेलना पड़ेगा।"

"कहाँ फँसा भगवन्! अध्यापकों की तनुख्वाह नाटकों से निकलती है।......" मैंने मन में सोचा।

"आप इस समय कोई भी अभिनय करके दिखाइये।"

अजीब मुसीबत थी। सत्य हरिश्चन्द्र और ध्रुव-लीला अनेकों बार देखे थे संयोग से कुछ संवाद भी याद थे। मगर तारामती, शैव्या का पार्ट और कोट-पतलून और ऊपर से गला जैसे साइरन! उफ्, ऐसी दशा में तो जानीवाकर की ऐक्टिंग भी न होगी, पर रणधीरसिंह जैसी मरता क्या न करता वाली बात थी। देखा कि जमीन कच्ची है। फौरन शरीर को ऐंठता धरती पर लम्ब स्वरूप गिर पड़ा। हाथ में फाउन्टेन पैन था, उसे भी होठों से रगड़ डाला। इंटरव्यू कर्ता घबरा गये। "ओंठ नीले पड़ गये। बेहोश"...वे चिल्ला रहे थे। जैसे ही उन्होंने पानी से भरी बाल्टी उड़ेलनी चाही कि मैं कपड़ों की खातिर तत्काल उठ बैठा और सफलता की दाद पाने के लिए दोनों हाथ एक कर नमस्ते की।

"क्या मतलब?" उनमें से लगभग सभी बोले।

"जी, यह बेहोशी का अभिनय था।"

"आप जा सकते हैं।" और मैं बाहर निकल आया। दुःख में भी हँसना पड़ ही गया।

यहीं तक नहीं, कभी-कभी तो ऐसे ज्ञानाचार्यों से पाला पड़ जाता है कि नानी याद आ जाती है। एक इन्टरव्यू में एक एम० एस-सी० ने प्रश्न किया, "श्यामसुन्दरदास और रामचन्द्र शुक्ल की लिखी भाषा-विज्ञान की पुस्तकों में कौन-सी श्रेष्ठ है?"

अब बताइये, इसका उत्तर हजारीप्रसाद द्विवेदी भी भला क्या देंगे? मगर मैंने तुरन्त कहा, "जी आवरण तो श्यामसुन्दरदास की

लिखी पुस्तक का श्रेष्ठ है और छपाई, सफाई रामचन्द्र शुक्ल द्वारा लिखी पुस्तक की।"

भला इससे उत्तम उत्तर हो ही क्या सकता था ?

प्रवक्ता-पद के लिए इन्टरव्यू लेने वाले कितने निरक्षर भट्टाचार्य हो सकते हैं, इसका अनुभव हाथरस में हुआ। सबसे आगे प्रिंसिपल बैठा था और उसके पीछे गजी वाले, कपास वाले, अँगोछा वाले, घी वाले, गुड़ वाले सेठ ऊँची-ऊँची पगड़ी ताने अंगरक्षक के समान विराजमान थे। तीन स्थान थे और प्रार्थी थे तेहत्तर। जिस कमरे में हमें भरा गया वहाँ केवल गन्दे फर्श पड़े थे। मेरे सहयोगी उम्मीदवारों में से कुछ सावधानी से बैठे थे तथा कुछ खड़े थे। मैंने कुछ बिना पूछे-ताछे ही अपना पैण्ट उतार कर टाँग दिया और फर्श पर बैठ गया। फिर क्या था, सभी ने अपने-अपने पैण्ट उतार दिए और अंडरवियर पहने आराम से फर्श पर बैठ गये। गप्पें लड़ाने और परिचय प्राप्त करने के परस्पर प्रयास हुए। जिसका नाम बुलता, वह पैंट पहनता और चल देता। सहसा प्रिंसिपल महोदय मय तीन-चार सेठों के वहाँ दृष्टिगोचर हुए।

कुछ प्रार्थी संकोच में बैठे रहे और अधिकांश झिझकते खड़े हो गये। "यह क्या बदतमीजी है।" वह चीखे।

"जी, नई प्रकार की ड्रेस है।" मैंने उत्तर दिया, "वरना हम सभी एम० ए० पास कोई मूर्ख थोड़े ही हैं।"

प्रिंसिपल साहब का माथा जरा ठनका। कमीज, कोट टाई के नीचे नंगी टाँगें। तभी उनकी निगाह टंगी हुई पैण्टों पर गई। बड़े झेंपे, तुरन्त कुर्सियों का प्रबन्ध हुआ। जिस समय मैं इण्टरव्यू के कमरे में गया, एक सेठजी ने हाथ हिलाकर, मुँह हिलाया, "बैठ जाओ, लल्लू।"

"अच्छा काका," मैंने मन ही मन कहा और कुर्सी पर बैठ गया।

"कहाँ से आ रहे हो ?" दूसरा प्रश्न हुआ।

"जी, अलीगढ़ से", मैंने जवाब दिया।

"सोने का क्या भाव है वां ?"

थोड़ी देर के लिए में चौंका ।

"रवा, पाँसे और गिन्नी का भाव अलग-अलग बताना ।" उन्होंने अपने प्रश्न को अधिक विस्तृत किया ।

मुझे लगा कि सूर अंटाचित्त हो गये हैं और तुलसीदास का आसन डोलने लगा है । जीवन में सोना खरीदने की कभी आवश्यकता ही नहीं हुई थी । मैं एक दम घबरा गया कि तभी प्रिंसिपल ने मुझे बचाया, "कालेज तो आपका ही है ।"

मैं पुनः चौंका, "जी, मैं तो बहुत गरीब हूँ और मेरे पिता के पास झोंपड़ी भी नहीं है ।"

"यह नहीं," उन्होंने स्पष्ट किया, "आपकी ही जाति का है ।"

"ओह !" मेरे मुँह से निकला, "ठीक है ठीक है ।"

"तो फिर अस्सी रुपये लोगे ?"

मेरे लिए यह एक नई समस्या थी । शिक्षा के बारे में कोई प्रश्न ही न पूछा था ।

"मगर ग्रेड तो एक सौ पचास से आरम्भ होता है ।" मैंने धीरे से कहा ।

"उतने रुपये साइन करने को मिल जाया करेंगे । मिनागी ले लेना ।"

"मगर···"

"नब्बे से अधिक नहीं ।"

इसी समय कोई सेठ कह रहा था, "आज सुपाड़ी उतर गई ।"

"हाँ," दूसरा कोई उत्तर दे रहा था । "और कपास चढ़ गई ।"

मैं उठ खड़ा हुआ । बाहर लोगों को समझाया । सभी चलने को तैयार हो गये, तभी प्रिंसिपल पुनः आया और आते ही पहला वाक्य बोला, "नब्बे रुपये पर कोई तैयार है, एक ।"

जो लोग पीछे हाथ बाँधे खड़े थे, उनके हाथ खुल गये ।

"पिचानबे पर" जैसे प्रिन्सीपल ने कहा, 'दो ।'

सात-आठ आदमियों के हाथ अपनी-अपनी नाक खुजाने लगे ।

"तो फिर सौ पर" जैसे प्रिंसिपल ने 'तीन' कहा हो और एक साथ तीन हाथ नाक पर से उठकर आसमान में जा लटके, "हम तैयार हैं।"

बाकी लोग बाहर आ गये। गर्मी के मारे बुरा हाल था। सिर भन्ना रहा था। तबियत कुढ़ी हुई थी। मैंने पोस्टरों पर निगाह घुमाई, शायद कोई चलचित्र तुरन्त देखने को मिल जाये।





नेता बनना एक चांस, एक कला

उस दिन पार्टी के खुले अधिवेशन में मैं मित्रों को उसी प्रकार तलाश कर रहा था जिस प्रकार सरकारी कर्मचारी छुट्टियों के लिए बहाने तलाश किया करता है। कोई मुझे मिलता तो मुझे जन्मजात् नेता के वेष में देखता। मेरा दो गज छः इंच का सीना बिल्लों से उसी प्रकार आच्छादित था जिस प्रकार नव-वधू का मुख लाज की लालिमा से अनुरंजित हो। लीडर या नेता की सफल उपाधि मैंने वैसे ही प्राप्त की जैसे संयोग से एक बार किसी धनी और बड़े आदमी के ठीक

हो जाने पर अदना सा नीम-हकीम नगर का प्रसिद्ध डाक्टर हो जाता है। अहा ! कोई देखता, मैं रूलिंग कर रहा था। प्रेयसि के मुख के समान माइक मेरे अधरों के निकट था, लोग मुझे ही सभापति समझ रहे थे और सभापति महोदय थे कि उन्हें धक्के दे देकर मैंने तकिए के दूसरे सिरे पर पहुँचा दिया था, और मै उनके स्थान पर आ गया था। लोग जब पूछते हैं कि कहो भाई क्या तुम्हीं सभापति थे तो पहले मैं अकड़ के मसाला हो जाता हूँ, पर कहता कुछ नहीं। केवल होठों को सरलता से फैला भर देता हूँ। परिणाम यह होता है कि वे मेरी नम्रता के गीत गाते हैं।

अब कोई सुने कि मैं नेता कैसे बना। मैं कहता हूँ कि कोई सात जन्मों से सिद्धान्तों पर चले फिर भी वह नेता नहीं बन सकता। ये बात दूसरी है कि वह नेता न कहलवाना चाहे। न तो समाज-सेवा से पदवी मिलती है और न संगठन करने से ही। मिलती है तो सौ वर्ष के होने पर, तब तक आचार्य कर्वे ही जीवित रह सकते है। आत्मा नाम की वस्तु को दूर हटा कर स्वयं-विज्ञापन के कर्तव्य में जुट पड़े तो विजय ही विजय है। अहा ! जब मै मेज पर हाथ मारता सावधानी से चीख रहा था तब मन में तो आया कि नेता बनने पर एक भाषण दूँ, किन्तु मैं जानता था कि मेरे भाषण में प्रभविष्णुता अत्यधिक होती है, कारण मैं भाषण कला से पूर्ण परिचित हूँ। गला फाड़ना, चीखना और चिल्लाना आठ-दस बार खाँसना, दो दर्जन बार पानी मँगवा कर सिर्फ एक घूँट पीना। (जाड़ा हो तो चाय मंगवा कर बिना पिये ठंडी कर पुनः मंगवाना) हाथ-पैर में सावधानी के साथ झटके देते जाना, अपने को बचाकर दो-चार गाली भी सुना देना, कुछ ऐसी बातें याद रखना जैसे, 'बड़े अफसोस की बात है', 'कहते दुख होता है', 'सुनता हूँ तो लज्जा आती है' आदि। बीच में एकाध बार गला भर आना चाहिए, आवाज भारी हो जानी चाहिए, दो चार आँसू टपक पड़ने चाहिएँ, नहीं तो रूमाल ही आंखों से लगाकर हिचकी लेनी चाहिए आदि। अतएव मैं भाषण देने से रुक गया। नेताओं की संख्या बढ़ाने से कोई लाभ न था।

मेरा दावा है कि नेता बनना एक नांम है, एक कला है। यों शम भना चाहिये कि जितने पुराने नेता हैं, वे नांग से, नेता बन गये हैं। उदाहरण स्वरूप---

(१) किसी नेता की पत्नी के पेट से जन्म लेना। ये गर्व का न होकर 'गर्भ' का विषय होता है।

(२) जेल गये चोर बनकर और बाहर निकले तो अन्य राजनीतिक नेताओं के साथ।

(३) सरसों का तेल लेने के लिए सड़क पार की कि जुलूस पर छोड़ी गोली आ लगी और शीशी दूर जा गिरी।

(४) अंधों में काने राजा होने के कारण लोग नेता मान लें।

(५) परिस्थिति से विवश होकर जैसे किसी बड़े नेता के चपरासी बनकर भी यदि देश विदेशों का चक्कर काटा, प्रसिद्ध सम्मेलनों में उपस्थित रहे तो इस नवीन ज्ञान को बताते रहने के कारण।

जितने आज के नेता हैं; वे सब 'कला' के कारण। सच तो यह है कि नेता बनने का एक कोर्स है जिसे या तो 'संयोग' से पार किया जा सकता है या फिर अपनी प्रतिभा और बुद्धि-बल से।

मैंने 'कला-पक्ष' को अपनाया। अधिवेशन में जाने से पूर्व मालूम किया कि किस नेता से किस नेता का विगाड़ है। कौन किसके मुखारविन्द को देखकर व्रत रखने की इच्छा रखता है। बस, एक के पास जाकर दूसरे की वह बुराई की कि मैं उनकी निगाहों में देवतावतार और वे परस्पर राक्षसों के वंशज समझने लगे। नेताओं को इस प्रकार अनुकूल कर छोटे-छोटे दलों व संगठनों पर एक गृद्ध-दृष्टि डाली। स्पेशल मीटिंग्स कौल कराईं। एक के विरुद्ध दूसरे के कानों में वह जहर उगला कि सभी ने मुझे अपना प्रतिनिधि बनने पर बल दिया। पर मैं तो निस्वार्थी ठहरा! चाणक्य की कामनाएँ मेरा आदर्श थीं!!

इस जोड़-तोड़ और फोड़ की नीति को मैंने अपनाया और नेता का लोकप्रिय वेश धारण किया। गुमनामों से मैं पहले ही पत्रों में अपनी प्रशंसा कर चुका था। जन-सेवा के जितने कार्य हो सकते थे (श्रमदान,

पीड़ितों की सेवा, किसी वस्तु का उद्घाटन आदि) उन सभी कार्यों के अपने फोटो मैंने स्टूडियो में ही तैयार करा लिए थे, जो पत्रों में मुख पृष्ठ पर निकल चुके थे। अधिवेशन स्थान में मैं पहले ही से जा पहुँचा। पाँच-छः मालाएँ स्वयं ही खरीद कर गले में डाल लीं और उन्हें बिना उतारे ही भाग दौड़ आरम्भ कर दी अगर कोई बड़ा नेता हो तो उसे प्रत्येक कार्य के आरम्भ हो चुकने के बाद में आना चाहिये। किसी के सामने मैं दो मिनट से अधिक नहीं ठहरा; तूफान के समान आता था और आँधी के समान चला जाता था। लोग समझते, वाह! क्या काम करने वाला है, बात करने की भी फुरसत नहीं। देश को ऐसे ही तरुणों की आवश्यकता है। ठीक इसी समय मैं यहीं कहीं किसी पर्दे की ओट में सिगरेट में दम लगा रहा होता था।

दूसरी बात, जिसका मुझे अभ्यास करना पड़ा, वह थी बोली में मधुरता लाना। पहले, सिद्धान्तों को मानकर सत्य बोलता था। अतः कड़ुवेपन की चिन्ता न थी, पर अब ढंग दूसरा था। जहर भरा होने पर भी अमृत बरसाना था। अहा! जिस किसी से बोला, पहले दो पैसे की लैमनचूस मुँह में डाल लेता था, ताकि यथासम्भव मीठा बोल सकूं। फिर हाथ जोड़ इतनी नम्रता दिखाता था कि लड़की वाला वर-पिता से भी इतनी नम्रता से क्या खाकर बात कर सकता है। मैं अद्भुत रूप से सफल भी हुआ।

पर एक साहब से बेढब पाला पड़ा। वह मेरी सुनने को तैयार ही नहीं होता था; यार-मेरा ऐसा सिखाया पढ़ाया गया था कि फौलाद हो गया था, झुकना जानता ही न था, टूट भले ही जाये। दूसरे जो मेरे विरोधी थे, मुस्करा रहे थे। मैं सोच रहा था कि मेरे सिखाये-पढ़ाये वक्ताओं से खरा साबित न हो, अतः सभा में यत्र-तत्र ऐसे अनुगामी बैठाल दिये कि उसे बोलने न दें। ऐसी महिलाओं को मंच पर ला बिठाला, जिनके शेर-बच्चे रोने-चीखने में प्रथम श्रेणी के थे। कुछ ऐसे भी थे जो मेरी बातों को ताड़ गये, उनको मैंने दो-दो तीन-तीन बिल्ले देकर राजी किया। माइक वाला माइक खराब करने पर राजी

नहीं हुआ। कुछ चेलों को मैंने चाय बनने के स्थान पर खड़ा किया ताकि संकेत मिलने पर जगह छोड़-छोड़कर चाय बाँटना आरम्भ कर दें, लेकिन इस सबकी आवश्यकता नहीं पड़ी। जैसे ही ये महाशय बोलने खड़े हुए और पहला सम्बोधन वाक्य कहा, मैं समझ गया कि यह आदमी काम बिगाड़ेगा। जैसे ही उसने मेरे दल के विरोध में पहला पौइंट कहा। मैं आवाज बदलकर चीख उठा, "साफ रटी हुई स्पीच है।" उस बन्दे पर ऐसा पाला पड़ा कि बोलती बन्द हो गई। लगा जैसे कुछ भूल गया, मेरे संकेत पर तालियाँ बज उठीं। वह मंच से हट गया, मैदान खाली हो गया।

मेरा नाम भी आया। भाषण देने की कला में मैं रिहर्सल कर चुका था। जाड़ा लग रहा था, फिर भी दो गिलास पानी के मंगा लिए (अपने में अधिक गर्मी दिखाने के लिए चाय के नियम को इस समय मुल्तवी रखा) उन लोगों को याद किया जिन्होंने देश के विरुद्ध कार्य किये थे या जिन्होंने कहा कुछ था और किया कुछ था। अपने किये काले कारनामों को भी दुहराया। व्यक्तियों के नाम हटा दिये और कुकार्यों का स्पष्ट वर्णन किया। मेरे भाषण में सिवाय परनिन्दा और छींटाकसी के कुछ न था। सभी श्रोता खुश थे, कारण परनिंदा सुनने से अधिक मन प्रणय-प्रसंग को छोड़ किसी में नहीं लगता। परिणाम यह निकला कि मेरा भाषण सर्वाधिक सारगर्भित सिद्ध हुआ और मुझे एक मँजा हुआ नेता मान लिया गया। मेरे शिष्यों ने मेरी जय के नारे लगाये। मैंने कितना कार्य किया इसका प्रतिनिधित्व मेरा रोना-चीखना, हँसना और देखभाल कर हाथ पैर फेंकना कर रहे थे। ये बताना तो मैं भूल ही गया कि मैं एक पुस्तिका प्रकाशित करवा ले गया था जो वहाँ वितरित कर दी गई थी। इस पुस्तिका में मेरे स्टूडियो निर्मित चित्र थे। प्रसिद्ध विवादों का पक्षपातमय स्पष्टीकरण था, उन्हें कैसे सुलझाया जाये इसके असम्भव तरीके थे।

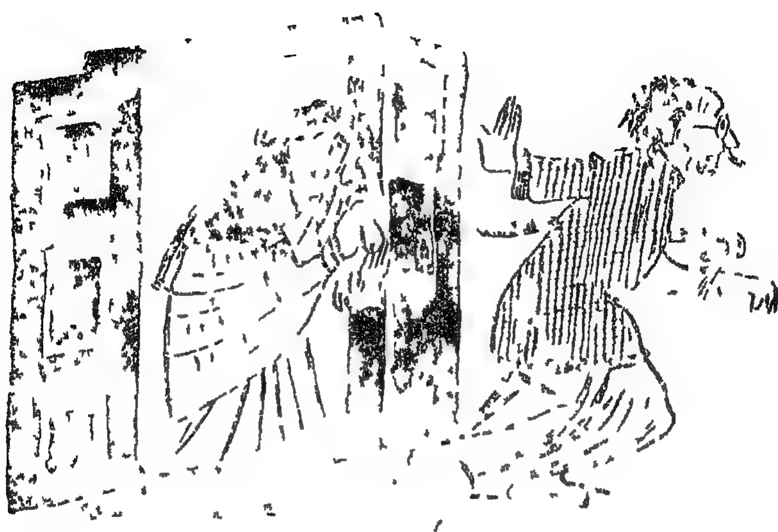
अगर मेरी श्रीमती जी होतीं तो मुझे और भी अधिक सफलता मिलती। वे -अनेक बड़े नेताओं से मेरे विषय में मिलतीं। महिला

सभाओं में मेरा नाम हो जाता। मुझे आशा है कि किसी बड़े नेता की कुरूप और नालायक लड़की से शादी कर लूंगा और तब मैं 'कला' को 'संयोग' से जोड़ दूंगा। नेता-पंथ इतना चिकना हो जायेगा कि उस पर मैं चलकर रपटूँगा नहीं, बल्कि रपट कर चलूँगा।

अंत में मेरा यह प्रबल अभिमत है कि देश में अनेक नेता-शिक्षा-मन्दिर स्थापित हों जहाँ नेता बनने के 'चांस' और 'कला' की असाधारण शिक्षा दी जाये।

प्रथम आचार्य के रूप में मैं अपनी सुसेवायें समर्पित करने को सन्नद्ध हूँ।





दो कौड़ी की प्रतिष्ठा

घड़ी ने साढ़े चार बजाए। समय पर बिना ध्यान दिये केवलराम ने सैंतीस के सात लिखे और हासिल के तीन लगाते-लगाते उनके दिमाग में एकाएक लगभग एक बात जबर्दस्ती घुस गई। मेरे पुरखे आये और चले गये। मैं भी यूँ ही मर जाऊँगा और मेरे बच्चे भी। क्या इस वंश-बेलि में कोई प्रसिद्ध न होगा? देश के इतिहास में मेरे वंश को क्या एक पंक्ति भी नसीब न होगी? काश! कि मैं ही प्रसिद्ध हो जाऊँ। और केवलराम गाल के अंक पर होल्डर दबाये प्रसिद्ध होने के उपाय सोचने लगे। किसी प्रमुख विरोधी नेता के विरोध में दो-तीन लगातार भाषण दे मारूँ या समूची सरकार की नीति की कटुतम आलोचना कर डालूँ। पर यह अपने बस की नहीं और फिर ऐसे तो बेशुमार हैं। आत्महत्या कर लूँ तो? नाम तो अवश्य प्रकाशित हो जायेगा, लेकिन बसन्ती और बच्चों का क्या होगा? नाम तो 'सम्पादक के नाम पाठकों के पत्र' स्तम्भ में रोजाना प्रकाशित हो सकता है। यदि पच्चीस

बीस दिन अनशन किया जाये तो कैसा रहेगा ? पर इतने दिन भूखा कैसे रहा जा सकता है ? हाँ, कभी लम्बे बीमार पड़े, तब यह सम्भव है, किन्तु बीमार पड़ना भी तो मुश्किल है। केवलराम को कुछ प्रसिद्ध व्यक्तियों की याद आई जो अपनी निराली प्रतिज्ञाओं के कारण प्रसिद्ध हो गये थे। केवलराम ने भी किसी ऐसी प्रतिज्ञा की पूँछ पकड़ने की सोची। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि अगले जन्म तक हवाई जहाज पर न चढ़ूँगा। लेकिन ऐसे तो करोड़ों होंगे, जिनको सात जन्म तक हवाई जहाज पर चढ़ना तो दूर, उसके दर्शन भी दुर्लभ हैं। यह प्रतिज्ञा तो कुछ ऐसी रही जैसे कोई अन्धा संसार को मिथ्या कहकर उसे न देखने की प्रतिज्ञा करले। अच्छी बात है, मैं किसी पर हाथ भी न उठाऊँगा, पूर्ण अहिंसक बनूँगा, पर जंची यह भी नहीं। मैं शौक का सगा भाई। अब ही कितनों पर हाथ उठाता हूँ।

केवलराम अपनी दुनिया में अपने अनुकूल प्रतिज्ञा तलाश कर रहे थे कि पाँच बज गये और दफ्तर बन्द होना शुरू हो गया। किसी ने मेज दी दराज बन्द करते हुए दोहा पढ़ा, "साँच बराबर तप नहीं, झूँठ बराबर पाप" वह इतना ही कह पाया था कि केवलराम ने उसके कंधे पर जोर से हाथ मारा, "शाबाश ! तुमने मुझे राह दिखा दी।"

साथी भी कुछ नहीं समझा। केवलराम ने मन ही मन प्रतिज्ञा की, "आज से, इस घड़ी से सदैव सत्य बोलूँगा।" और केवलराम ने खुली आँखों से देखा कि उनका नाम युधिष्ठिर और राजा हरिश्चन्द्र के साथ शोभा पा रहा है। उन्होंने कई ऐसे चित्र देखे थे जिनके पीछे प्रकाश का एक घेरा होता था। केवलराम को भी अनुभव हुआ कि उनकी देह-यष्टि से तेज की किरणें फूट रही हैं और उनके सिर के पीछे घेरेनुमा पीले प्रकाश का पुंज जगमगा रहा है। उन्होंने शान्ति की एक गंभीर श्वास ले खाता बन्द कर दिया।

सभी को यह पता था कि दुष्ट मैनेजर कभी का घर जा चुका है, किन्तु अनुमान उस समय गलत निकला जब आफिस के दरवाजे पर मैनेजर यशपाल चीखा, "शायद आप नहीं पहिचानते कि मैं कौन हूँ।"

संयोग से केवलराम यशपाल के सामने खड़े थे। उन्होंने उत्तर देना अपना कर्त्तव्य समझा। यशपाल की ओर दो कदम चलकर शान्ति से बोले, "आप मूर्ख-कुल-कमल-दिवाकर हैं और सौभाग्य की लहरों से इस पदवी-द्वीप का शासन भोग रहे हैं।"

यशपाल की आंखों से आग बरसने लगी। आश्चर्य से वह ठगा-सा रह गया।

"निकलो, यहाँ से" वह जोर से चिल्लाया और सभी लोग केवलराम के पीछे हो लिये, जो सबसे पहले शान्त भाव से चल दिये थे।

सभी ने केवलराम से जानना चाहा कि आज उन्हें यह क्या पागल पन सूझा ? मैनेजर को मुँह पर ही मूर्ख कह दिया, परन्तु केवलराम परम शान्त थे जैसे कोई विरागी सन्त होता है। उन्होंने किसी को कुछ भी न बताया क्योंकि वे जानते थे कि कवि यदि कविता में रस का नाम लेता है तो वह काव्य-दोष कहलाता है। केवलराम चाहते थे कि लोग उनके क्रिया-कलापों से उनकी प्रतिज्ञा को पहचानें।

केवलराम सीधे घर चले जा रहे थे कि गली के नुक्कड़ पर सेठ मूलचन्द ने घर दबाया, "भाई केवलराम जी, नमस्कार ! किधर जाते हो, मेरे रुपयों का क्या हुआ ? रोज आज की कल करते हो। निकालो रुपये बिना लिये नहीं टलूँगा, समझे।"

और दिन होता तो केवलराम घबराते, घिघियाते, कोई बहाना बनाते, किन्तु इस समय दाहिना हाथ उठाकर बोले, "सेठ मूलचन्द, ध्यान दो, मैं तुम्हारे रुपये कई वर्ष तक नहीं दे सकता, क्योंकि कुछ बचता ही नहीं है, और न मेरी देने की ही इच्छा है।"

सेठ मूलचन्द आँखें फाड़ता रह गया। केवलराम को कई बार ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर देखा, "परन्तु वहां केवलराम ही थे जो अविचल मूर्ति से खड़े थे। सेठ को ताव आ गया। उसने केवलराम की टाई पकड़ ली, किन्तु केवलराम ने एक झटके से टाई छुड़ा ली और आगे बढ़ गये जैसे कोई धर्म प्रचारक निर्लिप्त भाव से आगे कदम बढ़ाता हो।

घर ज़रा देर से पहुँचे तो बसन्ती ने आड़े हाथों लिये, 'क्या आज भी दफ्तर में काम करते रहे, 'याद नहीं था कि साले और सरेज को स्टेशन लेने जाना था ?"

केवलराम ने बिना झिझके कहा, "मशहूर नाचने वाली तवायफ़ कटोरी के यहाँ चला गया था।"

"क्या कहा ?"

"मैं क्या करता ? जगमोहन बोला, "अगर मन करता हो तो जरूर चलो ' बस, मन तो करता ही था, अतः चला गया। वाकई बहुत सुन्दर नाचती है। दुबारा जाने की इच्छा कर रही है।"

बसन्ती देखती रह गई। उसने लड़ने के लिये कमर कसी ही थी कि सामने से उसका भाई मनोहर आता दिखाई दिया। मनोहर की पत्नी लीला भी साथ थी। बसन्ती खून का घूँट पीकर रह गई और जबर्दस्ती मुस्करा कर स्वागत करने बढ़ी।

"नमस्ते बहिन !" मनोहर ने कहा, "हम सामान कुछ भी नहीं लाये, क्या करते बोझ लाद कर ?"

"बेशरमी इसे ही कहते हैं।" केवलराम ने खाट पर पड़े-पड़े कहा।

मनोहर चौंका, किन्तु समझ न सका कि यह वाक्य किससे, क्यों और किस प्रसंग में कहा गया है। अतः वह आगे बढ़कर केवलराम से शिकायत कर बैठा, "आप हमें स्टेशन लिवाने नहीं आये, जीजाजी !"

"काम लग गया था," बसन्ती बोली।

"नहीं।" केवलराम ने कहा, "बहुत दिनों से इच्छा थी, कटोरी वेश्या का नाच देखने गया था और जान-बूझकर तुम्हें लिवाने नहीं गया।"

मनोहर सकपका गया। बसन्ती डर गई।

किसी तरह लीला ने मुस्करा कर कहा, "आपसे मिलकर बहुत खुशी हुई।"

"और मुझे आपसे मिलकर बहुत दुःख हुआ।" केवलराम ने लीला

को बीच ही से टोका। वे खाट पर उठ बैठे।

बसन्ती और मनोहर सहम गये। लीला एकदम पीछे हट गई।

"भला क्या दुःख हुआ ?" बसन्ती ने रुष्ट होकर पूछा।

"नं० १" केवलराम तन कर खड़े होगये, "इन लोगों को एक अलग कमरे की आवश्यकता होगी और हम सबको एक कमरे में सिमिट जाना होगा। नं० २ चाहे हम रूखी-सूखी खाते हों पर उन्हें चुपड़ी अवश्य देनी होगी। नं० ३ केवलराम ने सीधे हाथ की अँगुली उठाई इलाज को दवा आयेगी, रात को रोज दूध आयेगा, फल वगैरह भी चाहियें और यह सब एक दिन का थोड़े ही है। ठीक हो जाने पर सैर होगी। वैसे मुझे कोई बीमारी दिखाई नहीं देती। नं० ४, कुछ कहने के भी नहीं। अगर सेवा-सुश्रूषा में कुछ त्रुटि हुई तो ये लोग अपने घर जाकर खबर लेंगे। नं० ५······"

"बस, बस बहुत हुआ। यह हमारा अपमान है, हम चले।' मनोहर ने क्रोध में काँपते हुये पैर पटके और लीला की बाँह थाम द्वार की ओर मुड़ा। बसन्ती ने बहुत रोका। मनोहर कुछ रुका-गा भी लगा तो केवलराम ने आखिरी धक्का दे मारा, "जाने दो जहन्नुम में, क्या मुसीबत पालती हो ?"

मनोहर और लीला बड़बड़ाते हुये चले गये। बसन्ती तुनक पड़ी, "मैं कहती हूँ आज आप अवश्य पागल हो गये हैं। सभ्यता, शिष्टाचार क्या होता है ? सब ताक में रख दिया है। ओह ! मैंने कितना सामान तैयार किया था।"

"इन बीमार लोगों के लिये ?" और केवलराम फिर खाट पर पड़ रहे।

बसन्ती को घर काटने लगा। उसे केवलराम पागल लग रहे थे। उसे लगता था कि केवलराम के वेश में कोई अज्ञात व्यक्ति आ गया है। वह डरने भी लगी। इस समय वह घर से कहीं दूर जाना चाहती थी। बच्चे भी इस समय घर पर न होकर पड़ौस में थे, जहाँ गीत थे। बसन्ती को भी बुलावा आया था, पर अपने भाई और भाभी के आने की

सम्भावना से न गई थी।

थोड़ा सोचकर बसन्ती ने कपड़े बदले और सज-सँवर कर चली। केवलराम मुस्करा उठे। बसन्ती सब कुछ भूल मधुर कटाक्ष फेंक पूछ बैठी, "मैं कैसी लगती हूँ?"

केवलराम तपाक से बोले, "बेहद भौंड़ी, और भद्दी। उतारो इन कपड़ों को। मैं भी कैसा मूर्ख था कि इन कपड़ों को तुम्हारे लिये खरीद लाया।"

बसन्ती ने तुरन्त काली का रूप धारण कर लिया। उसने सारे जेवर-कपड़े उतार फेंके। इसको उठाया, उसको पटका। बसन्ती ने थोड़ी देर कबड्डी खेली और पलंग पर मरी-सी गिर पड़ी।

केवलराम संभल कर कुछ कहने ही वाले थे कि जगजीवन दौड़ा हुआ आया और केवलराम से बोला, "अरे! तुमने सेठ मूलचन्द से क्या कह दिया। कह रहा था, तीन दिन में मकान नीलाम न कर दिया तो नाम नहीं।"

केवलराम मुस्करा दिये। वे जानते थे कि सत्य के मार्ग में ऐसी बाधाएँ आती हैं।

किन्तु तभी रामस्वरूप हाँफता हुआ आया, "अरे केवलराम! फौरन मैनेजर यशपाल के घर जाओ। सुना है तुम्हारे डिसमिसल का ऑर्डर लिखकर ही कम्बख्त घर गया है।"

केवलराम के सामने क्षणभर में अखिल ब्रह्मांड घूम गया और वे आँखें बन्द कर एक दम गिर पड़े।

थोड़ी देर बाद केवलराम बिना जूता पहने घर से बाहर निकले और बुरी तरह हाँफते हुये एक ओर दौड़ पड़े। दोनों जूतों को हाथ में संभाले बसन्ती पीछे से ऊँची आवाज़ में कह रही थी, "ज़रा खुशामद-दरामद से काम लेना।"





इतवार का दिन

किसान से आप सावन की घटा छीन लीजिये, वह किसी अन्य साधन से सिचाई कर लेगा। दोपहर के समय जब सन्नाटे का पवन चल रहा हो और भैंसें कहीं पानी में तरी का आनन्द उठा रही हों, आप गड़रिये से बाँसुरी छीन लीजिये, शायद वह आपको मित्र जान बाँसुरी पर तान छेड़ने का लोभ छोड़ दे और वृक्ष की छाया में लाठी सिरहाने रख मीठी नींद सो जाय। लेकिन आप क्लर्क से इतवार छीन-कर देखिये, विश्वास रखिये तपेदिक के उग्र मरीज में भीमसेन का बल आ जायेगा और वह इतवार को छीनकर ही दूसरी साँस लेगा। क्लर्क का जीवन एक मरुस्थल ही तो है। बस कहीं-कहीं इतवार के मरुद्यान बिखरे हैं, जहाँ वह ठंडी जमीन पर दुखती पीठ टिका लेता है। न कोई कीर्तनबाज भगवान का नाम इस लगन से लेता है और न कोई सवारी बस की इस उत्कंठा से प्रतीक्षा करती है जितनी लगन और उत्कण्ठा इस इतवार के लिये क्लर्क में पाई जाती है। क्लर्क के जीवन में इतवार करुणा से भरे चित्र में एक मनोहर नृत्य है।

सच तो यह है कि जागने के बाद जो महत्व नींद का है वही महत्व इन छः दिनों के बाद इतवार का है। अहा! उस पहले इतवार की कल्पना कीजिये जब किसी ने लम्बी साँस लेकर पूरे चौबीस घण्टे न छूने के लिये कलम छोड़ दी होगी। मैं इतवार की उपमा कभी-कभी सागर से दिया करता हूँ, किन्तु सागर बेचारा क्या इतनी जल धाराओं को शरण देता होगा जितनी इच्छाओं, अरमानों और प्रतिज्ञाओं को इस इतवार की छाया में विश्राम मिलता है। छः दिनों की प्रजा इस दिन बादशाह बन जाती है। सुबह के दस बजे तक नाक के नगाड़े बजाइये, कोई रोकने वाला नहीं है, पर श्रीमान्! प्रत्येक वस्तु का एक पहलू दुखान्त भी तो है। अपने लिये यह इतवार सदा विपदा का चोला धारण कर आता है। अन्य दिन चिन्ता से श्रीमती जी भोजन तब भी तैयार करके खिला देती हैं, किन्तु इतवार के दिन वे नाक की नोंक पर आसमान उठाये घण्टों नयन-कमल बन्द किये पड़ी रहती हैं। जिस प्रकार सूर्य के गर्भ से उत्पन्न ग्रह, अटल सूर्य के चक्कर काटते हैं, उसी प्रकार खाट पर पड़ीं श्रीमती जी का चक्कर लता, सुरेश और पप्पी काटते हैं। हारकर अपन धाय के रूप में अवतार लेते हैं। बच्चों को सभी प्रकार से निबटाते है। चौके में भोजन का सारा सामान जुटा देते हैं। यहाँ तक कि चून माँड़ देते हैं। चूल्हे में अग्नि गर्म कर दाल चढ़ा देते हैं, तब श्रीमती जी की करबद्ध वन्दना करने का समय आता है। इस पर भी जागने के नखरे! कभी इस करवट तो कभी उस करवट। कभी ऊँ! कभी हाय! किसी प्रकार भवानी चेतीं भी तो ज़रा यह लाना मैं थक गई हूँ, ज़रा वह लाना मुझसे चला नहीं जाता। उफ्! तुम किधर हो! मुझे चक्कर आता है। ये कुछ ऐसे घिसे-पिटे सुपरिचित वाक्य हैं कि किसी भी परिवार-नियोजक की सिट्टी-पिट्टी इन्हें सुनकर गुम हो सकती है। जैसे कोई पहलवान सब प्रकार से कुशल होने पर भी चित्त हो जाये। अपन भी होश खोकर जो धीमे से कुछ कान में पूछ बैठे तो श्रीमती जी इस प्रकार तनकर खड़ी होती हैं कि अर्जुन ने क्या खाकर गाण्डीव ताना होगा और फिर श्रीमती

जी के वाक्बाण जो बिना प्रत्यंचा के छूटते हैं, धनंजय के नाराचों को सैकड़ों मील पीछे छोड़ जाते हैं ।

या फिर कोई इतवार ऐसा आता है कि अन्य दिन से भी पहले जागना पड़ता है । इस बार सत्यनारायण की कथा का आयोजन होता है । न जाने श्रीमती जी को सत्यनारायण से क्या प्रेम है कि चाहे जिस इतवार का गला सत्यनारायण के नाम पर घोट देती हैं । पड़ोसियों के पेट नगरकोट हो जाते हैं और अपन की अंटी ढीली होती है । एक बार अपन को कहीं शीघ्रता से जाना था । श्रीमती जी का आदेश मिला कि कथा समाप्त होने पर चले जाना । मेहमानों को मैं संभाल लूँगी । मैंने पंडित जी से कथा शीघ्र समाप्त करने की प्रार्थना की और पंडित जी को कान में से डाँटा, "यदि ऐसा न करोगे तो आगे से किसी दूसरे पंडित को लिवा के लाया करूँगा ।" पंडित जी के ज्ञान के हम स्थायी ग्राहक थे । अब जो उन्होंने कन्नी दबती देखी तो कथा संक्षिप्त कर दी । थोड़ी देर बाद हम जाने को कपड़े पहन रहे थे । सहसा कानों में कड़ुवा अमृत टपका । श्रीमती जी पूछ रही थीं, "पंडित जी कलावती की नाव तो आज डूबी ही नहीं ।" पंडित भी एक ही घुटा हुआ था । बोला, "देवी जी ! चवन्नी में कलावती की नाव नहीं डूब सकती ।" बात यह थी कि मैं पंडित जी को चवन्नी देकर ही चला आया था और उसने कलावती की कहानी के नाव डूबने का प्रसंग निकालकर कथा संक्षिप्त कर दी थी ।

"आप कलावती की नाव डुबोइये, पंडित जी ! मैं रुपया दूँगी ।" श्रीमती जी गरजीं, पर अपन धीमे से खिसक दिये ।

शायद यह पत्र भी क्लर्कों की दया पर जीवित है । मैंने किसी बड़े आदमी के घर सत्यनारायण की कथा नहीं सुनी । एक बार एक साहब के यहाँ कीर्तन हुआ था, वह भी रिकार्डों से । आदमी को मुँह खोलने की आवश्यकता नहीं पड़ी थी ।

या किसी इतवार को अपने पर वह बेभाव की पड़ती है कि उस पंडित पर ताव आकर रह जाता है जिसने श्रीमती जी के साथ जीवन

भर निर्वाह करने की शपथ दिलवाई थी। होता यह है कि श्रीमती कागज़ लेकर बैठ जाती हैं। महीने भर का खर्चा समझाने लगती हैं। व्यय अधिक आमदनी कम। निर्वाह कैसे? १५) किराया, २।।) नल का, २) भंगिन को, ३०) के गेहूँ, ६) की लकड़ी, २) का ममाला, ३) का तेल-साबुन, १०) बच्चों की फीस, ८) का दूध, ४) धुलाई-नकद ८२।।) हो गये। साग-भाजी अलग। कपड़े-लत्ते का पता नहीं। आना-जाना कल्पना के बाहर, मेहमान को सूखी भुसी नहीं; घी की सुगन्ध तक नहीं, रीति-रिवाज भगवान के भरोसे। १२५) में क्या-क्या हो? पर्व-त्यौहार तो भूल ही गई। अब आप ही बताइये, मैं इतवार की मौत न मनाऊँ तो क्या करूँ? बड़ी गनीमत समझो जो श्रीमती जी ने किसी गहने या साड़ी के बहाने अपना करम न ठोका। वर्ना पड़ौसियों की चर्चा करते हुये इस अदा से टसुए टपकातीं हैं कि गबन या चोरी करने को जी चाहता है।

यदि किसी इतवार को श्रीमती जी परम प्रसन्न दिखाई दें तो उस दिन की मुसीबत समझिये। निश्चय ही वह महीने का पहला इतवार होगा। उस दिन बाजार का सारा सामान घर आ जायेगा। लता को फ्राक, सुरेश को जूते, पप्पी को नेकर! स्वयं श्रीमती जी की न पूछिये। बालों की क्लिप से लेकर २५०) की साड़ी तक की चर्चा होती है किन्तु तनुख्वाह १२५) है इसलिये ११।।।=)।।। का नकली मोतियों का हार लेकर सन्तुष्ट हो जाती हैं और मजा यह है कि अपन सिवाय सामान और सामान वालों को ढोने के कोई काम नहीं करते। मुझे भी कुछ आवश्यकता है, यह श्रीमती जी के दिमाग में आजतक नहीं आया। सच तो यह है कि वे समझती हैं कि मुझे केवल उन्हीं की आवश्यकता है।

मैं जानता हूँ, आप सोचते होंगे कि सप्ताह में छः इतवार पड़ें और मैं दुआ करता हूँ कि इतवार को बाकी दिनों में बराबर-बराबर बाँट दिया जाये।

इस पर आप मुझसे सहानुभूति नहीं रखेंगे, पर आप बताइये मैं

करूँ भी क्या ? इस इतवार को उनकी सहेलियाँ आगई। उस इतवार को उन्हें कहीं जाना है, अमुक इतवार को वे सोयेंगी। विश्वास रखिये किसी भी शनिवार की रात को मैं सैकिंड शो नहीं देख सका। लीजिये, पिछले इतवार की बात है। न जाने कहाँ से श्रीमती जी की तीनों बहिनें टपक पड़ीं। दोनों भाई भी नत्थी थे। घर में शोर था कि होरी का हुरदंगा। न जाने क्या-क्या बन रहा था। मेरा काम केवल बाजार से यह ला, वह ला। महीने का अन्तिम इतवार पर श्रीमती जी के पास जैसे कारूँ का खजाना था। भगवान जाने क्या-क्या बना। अपन को खाने को मिला तो 'जीजा जी', पीने को मिला तो 'जीजा जी'। कम्बख्त इस जीजा जी शब्द से मैं इतना कभी नहीं घबराया था। शाम को श्रीमती जी का नादिरशाही हुक्म मिला। "सैकिंड शो चलना है।" मैंने कहा, "पैसे" तो उत्तर में मेरे हाथ में दस का नोट !"

"कम है !" मैं बोला।

"अपने पास से भी कुछ डालो" श्रीमती जी मुस्कराईं और इस अदा से कि मैंने उनके दोनों कंधे पकड़ लिये। वे छोड़ो-छोड़ो कहती हुई निकट से निकटतर होती आ रही थीं कि एक साथ जीजा जी की गोलियाँ चल पड़ीं। कम्बख्त साले-सालियों ने अपनी बहिन की खुशी का भी ध्यान न रखा।

मैं खुश था, चलो शो मिलेगा। बिल्ली के भाग्य से छींका टूटा। हम सभी चले। रास्ते में खूब चुहल हुई। आलोचना की कि मय श्रीमती जी के उनके भाई-बहिनों को यह विश्वास हो गया कि यदि यह चित्र न मिला तो जीवन बेकार गया। मेरे सिवा सभी के मुखारविन्द से मधु गिर रहा था।

किन्तु जब सिनेमा भवन पहुँचे तो अँधेरा। सभी चक्कर में। पता लगा कि किसी नेता के निधन पर सभी सिनेमा घर बन्द हैं। जैसे कोई अज्ञात चोट पड़ी। श्रीमती जी का चेहरा दर्शनीय ! साले-सालियों के मुख-कमल ! बस क्या पूछो ! मजा आ गया। दिनभर की थकान दूर हो गई। उस समय अगर मैं कच्चा बैंगन होता तो बिना भर्ता

बनाये खा जाते ।

घर आये तो जैसे वीराना हो। ताजी मार से सभी चुप । निदान मैं श्रीमती जी से अकड़ पड़ा, आखिर यह चुप्पी क्यों ? वह हुरदंगा कहाँ गया ? क्या कोई मर गया है ?"

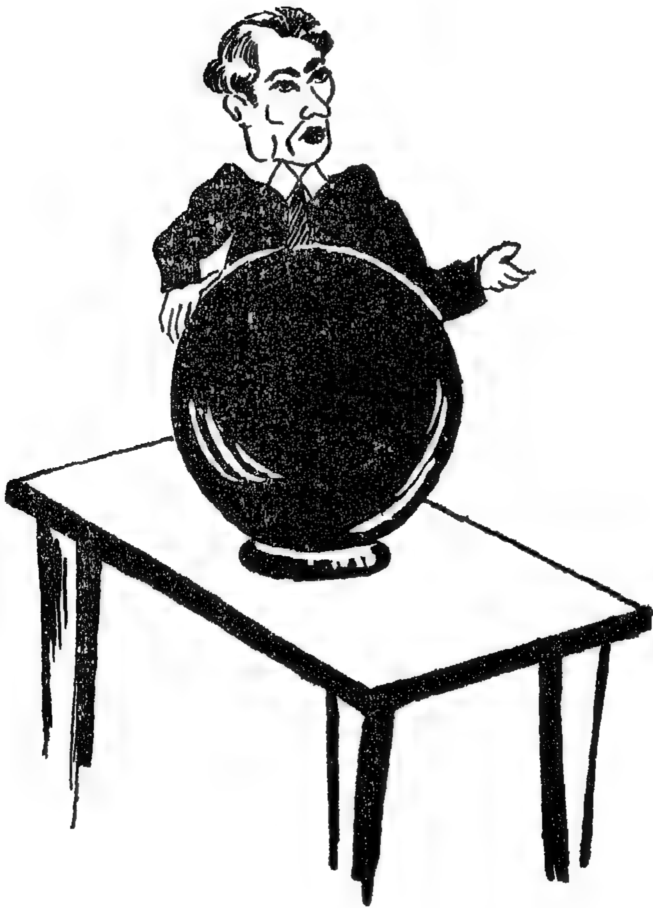
"दस रुपये इधर लाओ !" श्रीमती जी का चेहरा लाल पड़ रहा था, "आपने पहले क्यों नहीं बताया, टिकट लेने तो गये थे ?"

मैं चाहे एक बार अपने साहब पर भी बिगड़ जाऊँ, पर श्रीमती जी के क्रोध से सदैव डरता हूँ—विशेषतः मेहमानों के सामने ? दस का नोट धीमे से थमाते बोला, "समझ तो आपको उसी समय लेना चाहिये था, जब बाकी पैसे आपसे नहीं माँगे, मेरे पास कहाँ थे, फिर भी सच बताओ रानी ! क्या मुझे तुम सभी से मज़ाक करने का इतना भी अधिकार नहीं है ?"

सहसा श्रीमती के कोमल ओठों में छिपे मोती बिखर पड़े। धीमे से सिर हिलाया। दस का नोट झपाटे से छीनते हुए बोलीं, "हम सब कल पहला शो देखने जायेंगे। मुझे खेद है कि आप आफिस के कारण साथ न जा सकेंगे । इज्ज़त रखने को इन लोगों को एक दिन और रोकना पड़ेगा।"

अब आप ही बताइये यदि इतवार को मैं शेष छः दिनों में बराबर बराबर बाँटना चाहता हूँ तो क्या बुरा करता हूँ ?





विद्वान्सः मूर्खाः भवन्ति

बच्चों की अधिक संख्या इस बात का प्रमाण नहीं है कि पति-पत्नी में प्रेम है। घनी दाढ़ी मूँछ भी यह सिद्ध नहीं करती कि वह सिक्ख ही है। इसी प्रकार बी० ए०, एम० ए० या पी-एच० डी० पदवी प्राप्त महाशय बुद्धिमान ही हैं, यह भी कोई स्वयं सिद्ध बात नहीं है। बड़े-बड़े 'वेदप्रकाश' मूर्ख-शिरोमणि होते हैं।

श्रीयुत रामसुख जी को लीजिये। मालवी से लेकर एम० ए० फाइनल तक प्रत्येक छोटी-बड़ी परीक्षा मे कम से कम तीन वर्ष रह कर साधारण विद्यार्थी से तिगुना ज्ञान प्राप्त किया। आप उन्हे मूर्ख मत कहिये, किन्तु यह सही है कि चार बार उन्हे गलत रौल नम्बर लिख जाने के कारण टिकट हाथ मे होने पर भी प्लेटफार्म पर रह जाना पड़ा। कई बार गाडी परीक्षा आयोजकों की लापरवाही के कारण छूट गई। स्कीम ही कुछ ऐसी थी कि परीक्षा की गॅफ़िण्ड मीटिंग उस वक्त कर ली जाती जब वे मधुर निद्रा की सुखद गोद मे होते थे। यह समझने मे भूल नही होनी चाहिए कि सफर उन्हे हमेशा थर्ड क्लास मे ही करना पडा।

× × ×

गणित के प्रख्यात प्रोफेसर प्रणवीर सिह को आप अवश्य जानते है। उनके बारे में यह प्रसिद्ध है कि ब्लेक बोर्ड पर पीरियड का एक पल भी लिखते हुए ही बीतता है। उनकी अगुलियो मे सदैव चौक लगे रहने के कारण तर्जनी अंगुली मे यह गुण आ गया है कि चौक के न रहने पर भी वे एक पीरियड तर्जनी अंगुली से ही चौक की तरह लिख सकते है। गणित की अनेक सुन्दर पुस्तकें उन्होने लिखी है जो देश-विदेश मे प्रचलित है; किन्तु साग खरीदते समय यदि आलू साढ़े पाँच आने सेर हैं तो सात छटांक आलुओं के दाम कितने हुये, यह उनके बस की बात नही।

एक बार ऐसा हुआ कि एक कुंजडा चार आने के पाव भर टिंडे दे रहा था, किन्तु प्रोफेसर साहब कुछ कम करने को कह रहे थे। बड़ी कहा-सुनी के बाद कुजड़े ने कहा, "बाबूजी, आपके लिए मैं चालीस रुपये मन दे सकता हूँ, बस इससे धेला कम नहीं।" प्रोफेसर साहब खुश हो गये और तीन पाव टिंडों के बारह आने दे आये। समझा मैदान मार लिया।

× × ×

लक्खी की सराय के श्री धन्यकुमार वकील से भी आप परिचित

हैं। नारंगी रंग का एक कुत्ता प्रायः उनके घर आता-जाता रहता था। वकील साहब उससे पुत्र की तरह प्यार करने लगे। एक बार धन्य-कुमार जी शेव कर रहे थे कि कुत्ते महाशय आये और बड़े स्नेह से वकील साहब का घुटना चाटने लगे। वकील साहब को न जाने क्या सूझा कि अपना पार्कर पैन निकाला और बड़े प्रेम से कुत्ते के माथे पर बड़े-बड़े अक्षरों में मोटा-मोटा 'D. K.' लिख दिया। कुत्ता प्यार से पूँछ हिलाता चला गया। वकील साहब शेव करने लगे। यकायक उन्हें ख्याल आया कि यह मैंने क्या कर दिया? और वे आधी शेव छोड़कर कुत्ते को पकड़ने दौड़े। कुत्ता नामकरण तो शान्ति से करा गया था, पर जब वकील साहब पीछे-पीछे आये तो जानवर बुद्धि ठहरी, न जाने क्या समझा कि भागने लगा। कुत्ते और वकील साहब की दौड़ पतंग और पुछल्ले की तरह होती रही, लेकिन उस दिन कुत्ता हाथ न आया। तीन-चार दिन बाद कचहरी के रास्ते में कुत्ते से स्नेह-मिलन हुआ तो कुत्ते का भ्रम दूर हो चुका था। वकील साहब लिखे को तो न मिटा सके पर D. K. के आगे एपौस्ट्रफी एस ('S) बना दिया। यानी हो गया 'D. K.'S'

× × ×

आचार्य जगन्नाथ से एक बार न जाने किसने कहा था कि गेहूँ का वृक्ष नीम के पेड़ के बराबर होता है, जिससे गेहूँ झड़ पड़ते हैं। आचार्य महोदय ने स्वीकारोक्ति में सिर हिलाया था। इसको भी जाने दीजिए। श्रीमान् रामधारीसिंह फौरन कन्ट्री से एग्रीकलचर में डाक्टरेट करके आये हैं। एक बार यों ही घूम रहे थे कि बगल के बाग में देखा, माली किसी पेड़ को पानी दे रहा है। एग्रीकलचर स्पेशलिस्ट मि० रामधारीसिंह ने एक लेक्चर इस बात पर दिया कि पेड़ का नेचुरल डैवलपमैण्ट किस प्रकार होता है, फिर उस वृक्ष की देखभाल पर विस्तृत प्रकाश डाला और अन्त में बोले, "इसी प्रकार यदि इस आम के वृक्ष की देखभाल की जाती, उचित समय पर अनुकूल कार्य होते तो तना इतना कम लम्बा और पतला तथा फल इतना छोटा न होता।"

माली ने बहुत धीरे से कहा, "मगर बाबू साहब, यह तो अमरूद का पेड़ है।"

× × ×

दार्शनिकों की कहानियाँ आपने बहुत सुनी होंगी। किन्तु सत्य कभी-कभी कहानियों से भी विचित्र होता है। दार्शनिक वायुपुत्र जी एक बार घड़ा खरीदने गये। कुम्हार ने घड़े की ओर इशारा कर दिया। घड़ा उलटा रखा था। वायुपुत्र जी ने घड़े को परखा, टटोला और गंभीरता से कहा, "भाई कुम्हार, पहले तो इस घड़े का मुख ही नहीं है, पानी-अन्दर कैसे जायेगा और अगर किसी तरह चला भी गया तो पेंदा फूटा है, सारा पानी निकल जावेगा।"

× × ×

ऐसी बात नहीं है कि विद्वान् पुरुषों ने ही मूर्ख होने का ठेका ले रखा है। विदुषी महिलायें भी इस ओर उदासीन नहीं हैं। महिला कांग्रेस की मंत्राणी श्रीमती मुखर्जी हमेशा अपने पति से सावधानी के साथ सड़क पार करने को कहा करती थीं। एक बार परेशान पति झल्ला पड़े, "क्या मुझे अपनी जान प्यारी नहीं है?" श्रीमती मुखर्जी रुआँसी हो उठीं, "मैं कब कहती हूँ कि आपको जान प्यारी नहीं है, लेकिन आप पहिले पचास हजार का बीमा करा लीजिये, फिर चाहे आँख मीच के चलिये।"

× × ×

और कल ही मैटिनी शो में डाक्टर सावित्री ने स्क्रीन की ओर इशारा करते हुये बगल में बैठे अपने पति से कह दिया, "देखा, सामने प्रणय के दृश्य कितने सुन्दर और भावुक चल रहे हैं, पर हमें इनसे क्या प्रयोजन? हम तो पति-पत्नी हैं।"

× × ×

गर्ल्स कालिज की प्रिन्सीपल मिसेज सक्सैना को अपनी सह-अध्यापिकाओं के स्नेह पर बड़ा गर्व है। एक बार उनके आफिस में सभी अध्यापिकाएँ उदास चेहरे लिये एक पंक्ति में आकर खड़ी होगईं।

प्रिन्सीपल महोदया घबरा गईं।

"क्या हुआ ?" उन्होंने पूछा।

किसी ने बताया कि आदरणीया आचार्या के पूज्य पिताजी के बारे में सुना है कि एक बार वे पचास-साठ आदमियों के एक झुण्ड को लेकर किसी लड़की को भगा लाये थे।

"यह लड़की कौन थी ?" आचार्या का स्वर काँप रहा था।

"आपके नाना जी की सुपुत्री" कह कर सभी अध्यापिकाएँ धीमे-धीमे आफिस से बाहर निकल गईं। मिसैज सक्सैना ने सिर पीट लिया। वे सोच रही थीं कि पिताजी ने अपनी ही रिश्तेदारी में यह महान् नीचता कैसे की ?

× × ×

शाम को निराश लौटे पति को देख महिला क्लब की सभानेत्री चीख उठी, "क्या सम्बन्ध नहीं पटा। तो इसमें घबराने की क्या बात है ? उनके लड़के के लिये लड़कियाँ बहुतेरी और हमारी लड़की के लिये लड़के बहुतेरे।"

× × ×

अन्तिम उदाहरण लीजिये। रेल का थर्ड क्लास डिब्बा। भीड़ से भरा, तिल रखने को जगह नहीं। प्रथम श्रेणी के टिकट वाले एक अपटूडेट प्रौढ़ प्रोफेसर ने भी उसी डिब्बे में शरण ली। पूर्ण आधुनिका ग्रेजुएट पत्नी साथ थी। यात्रियों ने तुरन्त स्थान दिया। रेल चल पड़ी। स्थान और भी होगया। प्रोफेसर ने देखा कि सामने ही एक साफ-सुथरा गँवार कोई पुस्तक पढ़ रहा है। आश्चर्य यह कि उसकी पत्नी भी बैताल पच्चीसी पढ़ने में तल्लीन थी। सहसा प्रोफेसर ने कहा, "भाई कुछ सुनोगे ?"

गँवार ने किताब बन्द की और हाथ जोड़े, "हुकुम बाबूजी।"

"तुम दोनों पढ़े-लिखे मालूम देते हो।"

गँवार से अधिक उसकी पत्नी शरमा गई। घूँघट से उसने माथा ढक लिया।

"बहुत थोड़ा", वह बोला।

"देखो भाई", प्रोफेसर ने कहा, "हम तुमसे एक सवाल करेंगे। न बता सकोगे तो चार रुपये देने पड़ेंगे। तुम भी एक सवाल पूछना। हम न बता सकेंगे तो हम भी चार रुपये देंगे।"

लगभग सभी यात्रियों का ध्यान आकर्षित हुआ। आधुनिका ने गँवार की पत्नी की ओर देखा जैसे कह रही हो कि कहो अपने पति से कि चुनौती स्वीकार करे।

"पर बाबू", वह गँवार बोला, "आप इतने पढ़े कि ज्ञान के भंडार और मैं ठहरा मदरसे से दर्जा दो से ही बैठ जाने वाला। साहब आप तो हारने पर मुझे चार ही रुपये दें, मगर मैं हारूँगा तो एक ही रुपया दूँगा।"

"चलो यही सही।" प्रोफेसर ने कहा और अपनी पत्नी की ओर देखा। पत्नी ने लापरवाही से स्वीकृति दे दी।

"प्रश्न मैं करूँगा", वह गँवार बोला।

"पूछो।"

"ऐसा कौन-सा जानवर है जिसके तीन पैर, चार सिर और पाँच आँखें हैं।"

सारा डिब्बा चकरा गया। प्रोफेसर प्राणिशास्त्र के ही अध्यापक थे। जीवों का विज्ञान पढ़ाते-पढ़ाते ही बाल श्वेत किये थे, किन्तु ऐसा जानवर उन्होंने न पढ़ा था और न सुना। एक सैकिन्ड में बोले, "भाई यह तो मैं नहीं बता सकता।"

"तो लाओ चार रुपये बाबू।"

आधुनिका ने प्रोफेसर के संकेत पर तुरन्त वैनिटी बैग से चार रुपये दिये।

"अब तुम्हीं इसका उत्तर दो। यही प्रश्न मैं तुमसे पूछता हूँ।" प्रोफेसर ने प्रसन्न हो प्रश्न दुहराया।

"मैं भी नहीं जानता बाबू, लो यह एक रुपया।" और उस गँवार

ने जो चार रुपयों को सँभार भी न पाया था, एक रुपया लौटा दिया।

सारा डिब्बा आश्चर्य एवं आनन्द मिश्रित ठहाकों से भर उठा। गँवार की बहू ने मुस्काकर घूँघट और भी नीचा कर लिया।





दो बार में पहुँचा दूँगा, सरकार !

हम तीनों फेरी वाले से फल खरीद रहे थे कि पास ही से एक जोड़ा निकला। महिला पतली और लम्बी थी। पुरुष छोटा और मोटा था। क्रिकेट के खिलाड़ी चिरंजी से न रहा गया। बोला, "देखा आप लोगों ने, ऐसा लगता है कि गेंद बल्ला साथ-साथ टहल रहे हों।"

गणित के प्रोफेसर हरीश भी चुप रहने वाले न थे। कुर्सी के हत्थे पर झुकते हुए बोले, "मुझे तो ऐसा लग रहा है कि दस की संख्या चल रही हो।"

फेरी वाला भी कब चूकने वाला था? हँसकर कहने लगा, "माफ कीजियेगा सरकार! हँसना सेहत को बढ़ाने वाला है। मुझे तो ऐसा लगा मानो ककड़ी और तरबूजा चल फिर रहे हों।"

इतना कहना था कि हम तीनों ने बुरी तरह ठहाका लगाया और फेरी वाले की कल्पना की दाद दी। चिरंजी और हरीश फेरी वाले से चोट खा गये थे। चिरंजी फिर बोला, "हमारे शहर में एक मोटा

दुकानदार था। जब कभी बाज़ार में आँधी आती तो धूल से दुकानें अँट जाती, किन्तु वह बिल्कुल चिन्तित न होता, कारण, आँधी आई और वह दरवाजे से लगकर खड़ा हो गया फिर आँधी की क्या हिम्मत कि धूल का एक कण भी दुकान के अन्दर पहुँचा दे।"

प्रो० हरीश भी कम न थे। चहके, "हमारे शहर में भी एक मोटा था जो गंगा जी का परम भक्त था। एक बार गंगा जी से नहाकर आया तो दूसरे दिन उसके शरीर से बू आने लगी। बड़ा परेशान हुआ, पर पता नहीं लगा। निदान एक केले के छिलके पर गिरा और ऐसा कि तोंद सिर की ओर लुढ़क गई। लोगों ने देखा कि उसकी तोंद की सलवटों में लगभग एक दर्जन मछली दबी पड़ी हैं।

हमने जोर से हँसना चाहा कि फेरी वाला भी चुप न रहा, "माफ कीजियेगा हुजूर! हंसना जिन्दगी की निशानी है। हमारे गाँव में भी एक मोटा आदमी रहता था। बेचारा हाथ पानी भी नहीं ले सकता था। एक लम्बे, धोतीनुमा कपड़े को उसके टाँगों के बीच डाला जाता था और आरे के समान खींचा जाता था और तब बीसियों बाल्टी पानी सर्फ होता था हुजूर।"

अब वह ठहाका पड़ा कि बरामदा गूँज उठा। हम तीनों ही मान गये कि इस प्रतियोगिता में फेरी वाला प्रथम रहा।

फेरी वाला हँसता चला गया। चिरंजी ने फिर सुनाया कि एक विशेष प्रकार की साइकिलें बन रही हैं जिनमें वर्तमान गद्दी के आगे एक चौड़ी तथा गहरी गद्दी और होगी जहाँ बच्चे के अलावा तोंद को सरलता से फिट किया जा सकेगा, किन्तु अखाड़ा जमा नहीं और बरामदा सूना हो गया।

इसमें सन्देह नहीं कि मोटों की है मुसीबत। बचपन में बराबर के चिढ़ाते हैं। बड़े हो जाओ तो कपड़े नापने में दर्जी परेशान, घर से संयुक्त हो बाहर निकलें तो पत्नी परेशान। घर में ऐसे अनफिट कि न ये किसी और के कपड़े पहन सकें, न इनके कपड़े कोई और धारण कर सके। कुर्सी भी स्पेशल चाहिये और खाट भी। राशन की तो

बात ही क्या ?

मेरे मत में मोटों का एक अलग शहर बसना चाहिये। जहाँ हर वस्तु स्पेशल हो जो इन मोटों को सहन कर सके। किसी भी प्रकार के रिश्तेदार के रूप में भी ये किसी को परेशान कर सकते हैं।

मानना पड़ेगा कि मोटों की दुनिया ही निराली होती है। ये लुढ़कने में तेज, चलने में मन्द और दौड़ने में गिर पड़ने वाले होते हैं। दिमाग के विषय में कोई निश्चित राय नहीं दी जा सकती। एक मोटे ने एक पतले पर रिमार्क कसा था, "तुम्हें देख अनुमान होता है कि देश में अकाल पड़ा है।

"तुम्हें देख अकाल का कारण भी समझ में आ जायेगा।" उस पतले का उत्तर था।

दूसरे अवसर पर एक पतले महाशय ने बस में एक मोटे महोदय पर वार किया, "तुम लोगों से दुगुना किराया लेना चाहिये।"

"तब फिर तुम्हे बिठाने की आवश्यकता नहीं रहेगी।" उस मोटे ने तुरन्त उत्तर दिया।

यह तो सच है कि सवारियों से इन मोटों को बड़ा कष्ट होता है। रिक्शा वाले तो बिठाते ही नहीं। इक्के वाले कहेंगे, "मेरी घोड़ी को आज दाना नहीं मिला।" ताँगे वाला भी मोटी सवारी को घोड़े के पास नहीं जाने देता।

एक बार एक सिपाही ने ताँगा पकड़ा। एक सवारी अधिक थी। ताँगे वाले ने पीछे की सीट पर फैली मोटी सवारी की ओर संकेत किया, "यह सवारी नहीं है, हुजूर ! उलार न होने देने की दवा है।"

रेल के डिब्बे का द्वार भी इन्हें छोटा पड़ता है। एक बार टिकट चैकर ने एक मोटे आसामी को पकड़ा तो उत्तर मिला, "हर स्टेशन पर सवारियाँ आती-जातीं रहीं। मुझे बाहर निकलने को न समय मिला न स्थान। अतः यहाँ तक चला आया। आप मदद करें तो यहीं उतर जाऊँ।"

बस का द्वार भी संकुचित सिद्ध होता है। इनकी सुखद सवारी

बैलगाड़ी या सरदार जी का सामान ढोने का ठेला होता है। ये बैठ कर सवारी गाड़ी को भी माल गाड़ी वना देते हैं।

ठीक ये ही नियम मोटी स्त्री पर भी लागू होते हैं। कोई-कोई 'सुरभि-सुकुमारी' चार-चार मन की होती हैं। स्टेशन पर वेट लेनें मशीन पर चढ़ें तो 'एक वार में दो मत चढ़ो' की टिकट निकल आवे। अगर कहीं सास-बहू दोनों मोटी हों और भिड़ जायें तो प्रतीत होगा कि मुगल कालीन हथिनियाँ महावत विहीन हो युद्ध रत हैं। किसी-किसी को देखकर लगता है कि भरतपुर के किले की दीवार चली आ रही है और नितम्ब-भार मात्र से दिल्ली का पुल जवाव दे जायेगा। मोटे पति-पत्नी की ऐसे गज-दम्पत्ति से उपमा दी जा सकती है जो सिर्फ सूँड़ छुला कर अपना प्यार व्यक्त करते हैं। ऐसे दम्पत्ति पूर्ण आलिंगन के प्यासे ही मर जाते हैं।

अपनी अन्तिम घड़ी में एक मोटे आदमी ने अपने पुत्र से कहा, "मैं मर भी गया तो क्या चिन्ता ? धन तो बहुत है।"

"यह बात नहीं है पिता जी", वह सपूत बोला, "वल्लियों और नारियल की रस्सी का प्रबन्ध कर देने पर भी कोई आपको ले जाने को तैयार न होगा तब मैं ठेला मँगवाऊँगा या ढकेल, इसी का निर्णय नहीं कर पा रहा।"

मेरा अपना साबिका भी मोटों से पड़ा है। पहली बार एक दावत में; जब दोनों चौबे नाक तक अफर चुके तो एक बोला, "मेरी टाँगें मुझे दिखाई नहीं दे रहीं।"

अर्थात् वे अपनी गर्दन नीचे नहीं झुका सकते थे। इस पर दूसरा बोला, "भाई तू कहाँ से बोल रहा है ?" अर्थात् वे अपनी गर्दन इधर से उधर भी कर सकने में असमर्थ थे।

दूसरी बार एक नौकर को देखा था जो आधी रात को अपने मालिक के कमरे में न जाने क्या करने घुसा था। मालिक की सहसा आँख खुलीं तो वह एक मेज के नीचे चला गया और वहीं फँस गया। अब वह खिसके तो मेज भी चले। रात का एकान्त। पहले तो डर

लगा और अजीब हंगामा मचा, फिर मेज को अंग-भंग करके उसे निकाला गया ।

तीसरी बार तब, जब मैं देहली से अलीगढ़ आ रहा था। मेरे एक मित्र बने थे । (उन्हीं के कथनानुसार) जिनके कपड़ों की नाप दर्जी दो फीतों को बाँध कर लिया करता था और जो सामने खड़े होकर न कोई तमाशा देख सके थे न प्रथम पंक्ति में बैठ कर कभी भाषण सुन सके थे । वे भी मेरे साथ आ रहे थे। पहाड़गंज से स्टेशन आना था। गाड़ी का समय निकट था। एक रिक्शे वाले को बुलाया । पूछा, "स्टेशन का क्या लोगे ?"

रिक्शे वाले ने मेरे दोस्त को ऊपर से नीचे तक देखा। फिर बोला, "आठ आने मन लूँगा हुजूर !"

मेरे दोस्त क्रोध से काँप उठे। दूसरे रिक्शे वाले को आवाज दी, "स्टेशन का क्या लेगा ?"

उसने भी मेरे मित्र पर एक विहंगम दृष्टि डाली और उत्तर दिया, "दो बार में पहुँचा दूँगा, सरकार !"

क्रोध में भरे दोस्त की हालत बुरी हो रही थी, और मैं अपनी हँसी मुश्किल से रोक पा रहा था।

●



जमाने के नाम पर

जमाने के नाम पर जब मस्तिष्क के ज्ञान-भण्डार का दरवाजा खटखटाया तो आप ही आप ईश्वर का नाम आ गया और उस ईश्वर को, जिसने इस भेद-भरी दुनिया की रचना की, देखने की इच्छा तीव्र रूप से ललक उठी। मस्तिष्क के अन्दर विचार कुलाँचें भरने लगे— वह कैसा है? सुन्दर है अथवा कुरूप? काला है या गोरा? तंदुरुस्ती कैसी है? भोजन कैसा करता है? उसके यहाँ राशनिंग है या नहीं? सूट-बूट में रहता है या कुर्ते-पाजामे में! चेहरे पर पाउडर-क्रीम लगाता है या तेल चुपड़ता है? यदि लगाता है तो कौन सी? तिब्बत

या अफगान ? आँखों में सुर्मा, काजल या कुछ भी नहीं। चश्मा लगाता है या नहीं ? यदि लगता है तो कौन सा ? धूप का या आँखों की खराबी का ? सिगरेट पीता है या बीड़ी। यदि सिगरेट पीता है तो कौन सी ? कैंची की या ५५५ ? यदि बीड़ी तो कोन सी ? ७ नम्बर या पहलवान छाप ? पैदल चलता है या साइकिल पर ? कौनसी भाषा बोलता है ? हिन्दी या उर्दू ? अँगरेजी या और कोई ? ... सिनेमा मैटिनी देखता है या फर्स्ट शो ? गेवाकलर पसन्द है या टेक्नीकलर ? डान्स कौन से पसन्द हैं ? शास्त्रीय या रौक एण्ड रौल ?

आप हँसेंगे इन बातों पर, लेकिन क्या करें, अपने राम की अक्ल ही इतनी सी है।

खैर, तो ऐसे ही विचारों की बाढ़ में बहकर अपने राम वहाँ जा पहुँचे जहाँ ईश्वर की गलतियाँ छिपा दी गई थीं। दिमागी चरखे से कल रात का विचार सूत बनकर उलझ गया। "ईश्वर आलसी है। अपनी चीज को संभाल कर रखने का तनिक भी शऊर नहीं। कोई बाहर का देखले तो क्या कहे ? प्रमाणस्वरूप ईश्वर को सैर-सपाटे, यार-दोस्तों से इतनी भी फुरसत नहीं कि इन सितारों को करीने से सजाकर रखे। इधर-उधर बिखेर दिये हैं। अरे कितने ही तरह की तो डिजायनें हैं—सेंटर डिजायन, बोर्डर डिजायन। कोई तरतीब तो होती।"

अभी न जाने कितनी 'ब्लण्डर मिस्टेक' अपने राम निकालते पर सपूत ने दर्पण नीचे गिरा दिया। विवश हो खाट से झुका शीशा उठाने को तो नाक, कान, आँख, मुँह का अद्भुत भंडार दिखाई दिया। इससे पहले कि भिन्न-भिन्न स्वाद वाली वस्तुओं का बारीकी से निरीक्षण करें, हमारे चेहरे पर काली घटायें-सी घिरती हुई दिखाई दीं। दर्पण को साफ़ कर उन्हें हटाने की भी कोशिश की, किन्तु प्रयत्न असफल रहा। घटाओं के घिरने का स्थान रोमान्टिक न होकर घृणास्पद हो उठा और असहाय ईश्वर को वहाँ भी घसीट लिया गया। आप ही बताइये, साफ चिकने चबूतरे पर ये काली घास ! जो शीशे में देखने से घटाओं सी लगे ! नासमझी की भी हद होती है। भला

इसमें क्या चमत्कार सोचा था ईश्वर ने ? अपने राम बड़बड़ाते हुए लगे अपने चबूतरे रूपी मुँह पर हाथ फेरने कि······

"इस कूड़े पर झाड़ू लगवा आओ, आज छुट्टी है", श्रीमती जी ने कविता की।

"जाता हूँ, पैसे दे दो।"

"कितने लेगा।"

"चार आने से कम न लेगा।"

"पौने चार आने भी नहीं।"

"नहीं एक कौड़ी भी कम नहीं।"

"सैलून पर ही जाओगे न ?'' '''दुनिया दो आने में दाढ़ी-मूँछें बनाती है।'''और लोग बनवाते हैं'''" कहते-कहते श्रीमती जी ने एक दुअन्नी टन्न से फेंक दी।

"घिसी है, यह न चलेगी", अपने राम उठाते हुए बोले।

"वाह ! घिसी है तो क्या हुआ ? घर तो बनी नहीं। जैसी आई वैसी ही जावेगी।······"

"लेकिन दुकानदार को······"

लेकिन वेकिन क्या'''लो यह दूसरी···पर चलाना पहले उसे ही, समझे'''"

अपने राम ने वह दुअन्नी जेब में रखी, समय पर घिसी दुअन्नी की हिमायत करने को और चल दिये काली घटाओं से घिरे आसमान को नन्हीं-मुन्नी कोमल सी अपनी गरदन पर लादे, लोहे की एकतरफा पैनी झाड़ू से चबूतरे की घास साफ कराने के लिए, बाजार की ओर।

थोड़ी देर में सारी घास छिल गई। आगे का प्रश्न विचारणीय था। मूँछों की डिजायन कैसी हो ? अपने राम डिजायन का खास ध्यान रखते हैं। इस जीवन में काम आनेवाली डिजायनों के बारे में अपने राम को विद्यार्थी जीवन में कुछ नहीं बतलाया गया था। कर्जन, तितली, मक्खी, भौंरा, बरैंया, सफाचट आदि कई प्रकार की कटिंग अपने राम के सामने आईं। अपने राम चकरा गये तो राम भला करे उस झाड़ूवाले

का, उसने अपने आप मूंछें जरा-जरा ऊपर सरका दीं या तनिक-तनिक पीछे हटा दीं। अपने राम दुअन्नी दे खुशी-खुशी घर चले आये।

आसमान से काली बदरिया हट चुकी थी, चबूतरा बिना घास के चमक उठा था।

घर में घुसते ही श्रीमती जी ने जातिद्वय (पुरुष और नारी) को कोस डाला—"क्या होड़ लगा रखी है। एक दूसरे का चोला बदलना चाहते हैं। औरतों को देखो, मर्दाने कपड़े पहन, चश्मा लगा, घड़ी बाँध, छतरी लगा, साइकिल पर सवारी कस, व्याख्यान देकर मर्द बनना चाहती हैं। और ये मर्द हैं कि आँखें कजरारी लिये फिरते हैं। (कम्बख्त नाई ने अपने राम की आँखों में सुरमा लगा दिया था) तुम्हीं से क्या, आजकल के सभी लड़के पटियाँ डाले, पाउडर क्रीम लगाये, पान, स्नो, लाली-वाली सजाये सभी रूप से नारी बनते जा रहे हैं.....।' और एक बात कैसी ? हर मर्द गीत गायेगा तो औरतों के से। अरे दाढ़ी-मूंछों को ही लो—नारी सोचती है कि हमारे दाढ़ी-मूँछ होती तो कैसा होता ? और मर्द हैं कि दाढ़ी-मूँछ मुड़ाकर ही दम लेते हैं। और आपकी मूँछें तो एक ओर की छोटी और एक ओर की बड़ी हैं, जनाब !"

"अच्छा !" अपने राम चौंक पड़े। तुरन्त दर्पण ले इस घटना की इन्क्वाइरी करने बैठ गये। मगर हाल अजीब था। कभी दोनों दल बराबर बैठते। कभी एक छोटा तो दूसरा बड़ा। हार कर स्केल की शरण लेनी पड़ी। इस नाप-जोख में दो कठिनाइयाँ सामने आईं। नम्बर एक, स्केल को बीच में बिठाने के लिए सेंटर खोजना और नम्बर दो, होठों को सीधा कर स्केल से धरातल पर मिलाना। न तो स्केल मुड़कर गोल हो सकता था और न होंठ ही सतर होते थे। तीसरी मुसीबत यह थी कि स्केल ठीक तौर से जमता ही न था। अपने राम ने दर्पण श्रीमती जी के हाथ में दे दिया और अब दोनों हाथों से काम करने के लिये कमर कसकर खड़े हो गये। अपने राम के दोनों हाथ

व्यस्त थे और श्रीमती जी दर्पण संभाले थीं। वे बराबर मुस्करा रही थीं और अपने राम गम्भीरता से कार्यरत थे। स्केल के निशान भी तो कम्बख्त इकसार न थे और बाल बारीक थे और इसमें भी कभी दोनों पक्ष बराबर बैठते थे, कभी एक बड़ा दूसरा छोटा। अवश्य ही श्रीमती जी के हँसने के कारण शीशे का हिलना इस नाप-जोख की असफलता का कारण था।

"हिलो मत" हमने डाँटा।

"जी, अच्छा", फिर चुप्पी, फिर खिलखिलाहट।

सुपुत्र जी भी जब बच्चों का सा यह तमाशा देखने के लिये कमरे में चले आये तब श्रीमती जी ने प्रस्ताव रक्खा, "क्यों नहीं वहीं चले जाते। जहाँ से यह लाये हो।"

"धत्तेरे की ! इतनी मेहनत बेकार गई। श्रीमती जी का कहना ठीक लगा। और पता भी चल जाता कि किधर की छोटी हैं और किधर की बड़ी तो अपने राम क्या कर लेते ?"

मुँह पर रूमाल रखे अपने राम फिर नाई की दुकान का रास्ता नाँपने लगे। रास्ते में हर आदमी मुझे ऐसा लगता था जैसे कि उसने हमारी मूँछों की छुटाई-बड़ाई जान ली है और मन ही मन अपने राम की हँसी उड़ा रहा है। दो-चार आदमी जान-पहिचान के भी मिले।

"बड़ी बदबू आ रही है, स्वामी जी !"

"जी हाँ, इस शहर की सड़कें, नालियाँ, और यह साली गलियाँ···।

"किन्तु आप तो कभी इस तरह···"

और अपने राम खाँस कर आगे बढ़ जाते। किसी प्रकार नाई महाशय की दुकान पर पहुँचे। डर था कि कहीं घिसी दुअन्नी न लौटा दे क्योंकि पहले बिना देखे रख ली थी। दिमाग़ कलाबाजी खा रहा था। अपने राम सोच रहे थे कि क्या ही अच्छा होता कि आदमियों के बाल आते ही न। और जब आ ही गये हैं तो इतना तो होता कि स्वयं हजामत नहीं तो दाढ़ी-मूँछें बनाना तो जानते। खुद नहीं तो

श्रीमती जी ही दाढ़ी-मूँछें खुरच दिया करतीं···घर के अन्दर क्या बात है ?

इसी उधेड़-बुन में नाई महाराज की दुकान में आ विराजे। अब यह मुसीबत कि इतने सारे आदमियों के सामने नाई से कहें कैसे ? राम-राम जपते हुये बैठे रहे अपने राम मुँह पर रूमाल रखे। जब सब चले गये तो श्रीमान 'न्यायी' महाराज हमारी तरफ मुखातिब हुये। अपने राम ने नालिश की। पहले तो वह मूँछों पर दुबारा हाथ लगाने के लिये तैयार ही न हुआ और जब हुआ भी तो तनिक इधर और तनिक उधर उस्तरा चला कर पूछ बैठता "ठीक हो गई" और अपने राम गर्दन इधर-उधर घुमा कर कहते, "अभी नहीं" गरज यह कि जब तक मूँछों की जगह सफाचट मैदान न हो गया, अपने राम को सन्तोष न आया।

इस कसमकश में अपने राम तो यों ही रहे—केवल एकाध रत्ती का बोझ हट गया। अलबत्ता नाई दुखी हुआ। बिक्री छदाम की नहीं, समय इतना खराब कराया।

इधर अपने राम प्रसन्नता के हिंडोले में झूलते हुये घर आये तो लल्लू की महतारी उर्फ सुपुत्र की माता जी ने जो बदलती तस्वीर देखी तो जनाब वे दुहल्लर-तिहल्लर हो हो गईं। फुव्वारा हँसी का छूट पड़ा, "जितने मर्द पहले थे अब उतने भी नहीं रहे।" और फिर वही अट्ट-हास···दुल्लर-तिल्लर होना···मुस्कराहट···हा···हा···ही···ही।

अपने राम की मोटी-ताजी अक्ल ने झटपट उसी वक्त एक फार्मूला निकाल डाला—"जेती मूँछें, तेता मर्द"।

तब तो अपने राम के फार्मूले के अनुसार आज कल के नब्बे फीसदी मर्द केवल नाम के ही मर्द हैं। क्यों साहब है न ठीक ?



अंग्रेजी माध्यम रही

जब सुना कि राजेश का अंग्रेजी में डिस्टिक्शन आया है, तो हमारी आत्मा पहले और आगामी कई जन्मों मे घूम आई किन्तु उसे विश्वास नही आया। डिस्टिक्शन और वह भी अंग्रेजी में, कमाल यह कि इंग्लैण्ड में न होकर भारतवर्ष में, तुर्रा यह कि मद्रास में न होकर उत्तरप्रदेश में। हमने राजेश को तुरन्त बुलवाया और आते ही बम्ब छोड़ दिया, "क्यों बेपर की उड़ाता है रे छोकरे।"

"कैसी बेपर की चाचा जी!"

"यही कि अंग्रेजी में डिस्टिक्शन आया है तेरा।"

"वह तो आया है चाचाजी।"

"अबे मैं गणित में नही कह रहा। अंग्रेजी की बात कर रहा हूँ।"

राजेश हँसा, "अंग्रेजी की ही तो कह रहा हूं।"

"यानी सौ में पचहत्तर नम्बर!"

"जी नहीं, अस्सी।"

"अस्सी अर्थात् सौ में केवल बीस कम" हमारी चीख निकल गई और राजेश को हुक्म दिया कि एक गिलास ठण्डा पानी मुझे दे जाये और भाग जाये।

तब हम एकान्त में अपनी बुद्धि को हजार लानत भेज रहे थे जो अंग्रेजी से उसी प्रकार डरती और भागती रही है, जिस प्रकार गर्भ से विधवा और मूँछ से आधुनिका। आह ! जब वाइस प्रिन्सीपल साहब कन्वोकेशन के लिये आमंत्रित अतिथियों की सूची बनवा रहे थे तो बोले, "लिखो, मिसैज कमला भण्डारी।"

और हम चुप। उन्होंने पुनः दुहराया। हम फिर चुप। उन्होंने तीसरी बार कहा तो हमने कुछ लिखा। उन्होंने झाँका तो चीख पड़े, "तुम कैसे एम. ए. हो, मिसैज नहीं लिख सकते।"

"जी एम. ए. तो हिन्दी में हूँ। मिसैज लिखने का अवसर नहीं आया और न किसी ने मिसैज सहित बुलाया जो पढ़ने को मिलता" हमने तथ्य प्रकट किया।

वाइस प्रिन्सीपल साहब मुस्कराये क्योंकि बिना गाली दिये अभी तक किसी को साला कहने के हम अधिकारी न हुये थे।

जब प्रथम बार प्रिन्सीपल साहब को प्रार्थना-पत्र हमने अंग्रेजी में दिया था। बाहर जाने के लिये तीन दिन का अवकाश माँगा था। उन्होंने हमें बुलाया और प्रार्थना-पत्र सामने दिखाते हुए बोले, "ये क्या है ?"

"सर, आवश्यक काम है, जाना है।"

"वह तो ठीक है, मगर ये क्या है ? तुम एम. ए. होकर सही एप्लीकेशन भी नहीं लिख सकते।"

अब हमने ध्यान दिया। आँखें झुकाई तो तीन शब्दों पर लाल निशान लगे थे।

"सर" हमने उत्तर दिया, "एम. ए. तो हिन्दी में हूँ। इससे पहले अवकाश लेने का अवसर नहीं आया। विद्यार्थी जीवन में सदा हिन्दी में प्रार्थना-पत्र दिये थे। रही गलतियों की बात, सो सर,

अंग्रेजी में हमेशा ५० में १७, १०० में ३४ और १५० में ५१ से अधिक अंक लाना मैंने अपनी बुद्धि का अपमान समझा। सर, मुझे सत्तरह का ही पहाड़ा याद है।" प्रिन्सीपल साहब ने यस किया और हम चले आये।

अब तो पुस्तकाध्यक्षी करते-करते सात साल हो गये। अंग्रेजी लिखते-पढ़ते कुछ समझने लगा हूँ, पर आरम्भ में बड़ी विपत्ति आई थी। एक बार प्रिन्सीपल साहब कुछ लघु पुस्तिकायें लाये थे। हमने उनका एक्सैशन आदि कर लिया। दूसरे दिन प्रिन्सीपल साहब बोले, "मैं कुछ पैम्फलेट्स लाया था, सो मुझे दो।"

"आप कोई पैम्फलेट नहीं लाये, सर" हमने उत्तर दिया।

"लाया कैसे नहीं, २० या २५ हैं।"

"आप एक भी नहीं लाये सर" हमने उसी दृढ़ता से कहा।

"तुम्हारा दिमाग खराब है।" उन्होंने सरोश कहा और चले गये।

हमने गंगाप्रसाद चपरासी को बुलाया और पूछा, "ये पैम्फलेट क्या है ?"

"जी, रखे तो हैं। कल ही आपने नम्बर डाले हैं।" उसने उन लघु पुस्तिकाओं की ओर संकेत किया।

हम झेंपे, "जाओ प्रिन्सीपल साहब की मेज पर रख आओ।"

ऐसे ही एक बार प्रिन्सीपल साहब आकर बोले, "कल रात को स्टडी सेन्टर में रैक लगवा देना।"

"जी, अच्छा" हमने कहा और भूल गये।

दूसरे दिन हमसे पूछा गया, "रैक लग गये ?"

"जी, लग गये" हमारे मुँह से निकला।

प्रिन्सीपल साहब आये। स्टडी सेन्टर देखा और चले गये। हमने फिर गंगाप्रसाद से पूछा, "ये रैक क्या बला होते हैं ?"

"ये काठ के हैं तो ! जिनमें किताबें रखी हैं। मैंने लगा दिये थे।" उसने कहा। हमने शीतलोच्छ्वास छोड़ा।

केवल एक उदाहरण और। शाम के सात बजे थे। हम ऊँची

कुर्सी पर बैठे कुछ लिख रहे थे। इधर-उधर दो टेबुल लैम्प जल रहे थे। पीछे टेबुलफैन हवा छोड़ रहा था। लाट साहब के नाती हो रहे थे। उमी समय एक अपटूडेट जैन्टिल-मैन आये। अपनी टाई और टोप संभालते हुये उन्होंने अंग्रेजी में बातें कीं। हमने भी शेरवानी का गला छूते हुये उत्तर दिये। आगन्तुक महोदय 'थैंक्स' कह कर चले गये।

आप विश्वास कीजिये। इस पाँच मिनट के वार्तालाप में न तो हम उनकी अंग्रेजी समझे और न ये समझे कि हमने अंग्रेजी में क्या कहा। अजीब मजाक था।

अंग्रेजी ने टी. बी. के समान हमारा पीछा नहीं छोड़ा। हम जिस कक्षा में रहे अंग्रेजी माध्यम रही। ठीक एक वर्ष पीछे हिन्दी माध्यम होती चली आ रही थी। मन में तो आया कि एक बार फेल हो जायें, किन्तु परीक्षकों की कृपा ही न हुई।

बी. ए. प्रथम वर्ष की षटमासिक परीक्षा थी। भारतीय अर्थशास्त्र का पेपर था। हमने अंग्रेजी में उत्तर लिखे। प्रत्येक उत्तर का प्रथम वाक्य 'नो डाउट' से आरम्भ किया। उदाहरण के लिये एक उत्तर का प्रथम वाक्य ये था! "नो डाउट दैट ऐवरी फिफ्थ मैन ऑफ दि वर्ल्ड इज ऐन इन्डियन" क्या कलात्मक वाक्य था। ऐन इन्डियन पढ़कर हृदय मयूर नाच उठा। आर्टिकल शत-प्रतिशत सही था। मगर जब उत्तर पुस्तिकायें सामने आईं तो कलात्मक वाक्य रखा रह गया। कारण डाउट की स्पैलिंग्स ही गलत थे। हमने डी. ओ. यू. जी. एच. टी. लिखा था। इस प्रकार से पाँचों उतरों के पाँचों प्रथम वाक्यों के पाँचों प्रथम शब्द गलत थे और पैन द्वारा प्रसव किये गये लाल अण्डों से बन्दी थे।

बी. ए. फाइनल (१९५१) की परीक्षा। वही भारतीय अर्थशास्त्र का प्रश्न-पत्र। एक प्रश्न बहुत याद किया था। भारतीय आबादी देश को उन्नत नहीं होने देती। वाक्य रटे, आँकड़े घोटे। प्रश्न भी परीक्षा में आया, किन्तु उसकी भाषा भिन्न थी, "ग्रोथ ऑफ पोपूलेशन इज ए मीनेस टू इन्डियन प्रौसपैरिटी" इसे प्रमाणित करना था।

पर हमारा दुर्भाग्य। 'मीनेस' को हम 'मीन्स' समझे। अब प्रश्न हुआ कि आबादी भारतीय सम्पन्नता का साधन है, सिद्ध कीजिये। हमने अपने उत्तर को शीर्पासन लगवा दिया। रटे वाक्य और घुटे आँकड़े भूल गये। हमने प्रमाणित किया कि भारत की उर्वरा भूमि में अनेक खनिज-पदार्थ भरे पड़े हैं। प्राकृतिक वैभव बिखरा पड़ा है। अनेक योजनाएँ चल सकती हैं। उसमें भारतीय आबादी उन्नति का कारण बनेगी। बच्चे पैदा करना भारत के उत्कर्ष में सहयोग देना है; आदि-आदि।

परीक्षा भवन से बाहर आये तो भवानी बोला, "कहो दोस्त, घुटा हुआ प्रश्न आ गया।"

"कहाँ आया" हम बोले, तो उसने प्रश्न को इशारा किया।

"ये कैसे ?"

"अबे साफ तो है कि आबादी भारतीय सम्पन्नता को शाप है," भवानी झल्लाया।

"शाप है," हमें आश्चर्य हुआ।

"अबे हाँ शाप है। लिखा तो है मीनेस। मीनेस माने शाप", वह और भी झल्लाया।

हम सिर पकड़ कर वहीं बैठ गये।

अंग्रेजी का निबन्ध तो हम कक्षा में कभी भी न लिख पाये। परीक्षा में तो विवशता होती थी। एक बार अंग्रेजी के प्रवक्ता श्री ओ. पी. गोविल ने एक निबन्ध लिखवाया। किसी छात्र को न छोड़ा। शीर्षक था "दी फ्यूचर ऑफ इंगलिश इन फ्री इंडिया" हमारे निज के विचार तो कुछ और ही थे, किन्तु उन्हीं दिनों 'ब्लिट्ज' में भी ये निबन्ध निकला। हमने अक्षरशः नकल किया। बत्तीस पृष्ठ की एक कापी दोनों ओर से भर गई। गोविल साहब देखते-देखते थक गये। नवें पृष्ठ पर ही लिख दिया 'टू लोंग'। कहीं-कहीं निशान भी थे। मन में तो आया कि कहें, निशान लगाने की हिम्मत कैसे पड़ी। ब्लिट्ज की नकल है। पर शान्त रहा। फिर कभी हमसे निबन्ध लिखने को नहीं

कहा गया।

अंग्रेजी में हमारे कमजोर होने के कई कारण थे। पहले तो हम हिन्दुस्तानी। दूसरे इतना समय कहाँ कि अंग्रेजी की स्पेलिंग्स घोटें। अंग्रेजी का शब्द, मुहावरा, प्रत्येक वाक्य समय चाहता है। कर्त्ता के तुरन्त पश्चात् क्रिया, भला हिन्दी से कहाँ मेल जिसे एक बार पढ़ा याद हो गया। तीसरे हिन्दी के शौकीन। कोर्स की पुस्तकों के अतिरिक्त कहानी-कविता पढ़ते ही नहीं लिखते भी थे। उधर अंग्रेजी की काव्य-कला और कहानी-कला से एकदम अपरिचित। हमारा मत है कि बिना नोट्स के अंग्रेजी की कोई भी बात समझ में नहीं आ सकती। चौथे अंग्रेजी की ग्रामर समझ में नहीं आती थी। केस-इन-औपोजीशन से बड़ा घबराता था। आई ऐन जी वाले शब्द तो बड़े मनहूस होते हैं। पता नहीं लगता कि कब जीरंड हो गये और कब पार्ट पार्टिसिपिल। ऐसे शब्दों की पार्जिग (पद-व्याख्या) मैंने हमेशा गोली डाल कर की। पाँचवें ट्रान्सलेशन में कठिनाई। ये पता नहीं लगता था कि कहाँ 'ऐट' आयेगा और कहाँ 'औन', कहाँ 'इन्टू' आयेगा और कहाँ 'इन' या 'विदिन'; कहाँ 'फौर' फिट होगा और कहाँ 'सिन्स', कहाँ 'विद' विराजेंगे और कहाँ 'बाई'। ऐसी अनेक बातें हैं जो समझ से बाहर की हैं। छटे अंग्रेजी की स्पेलिंग्स हमारी सबसे बड़ी मुसीबत थी। जो बोला जाये वही लिखा जाये, ऐसा है ही नहीं। जो शब्द आपने नहीं पढ़ा उसे आप विश्वासपूर्वक नहीं लिख सकते। उदाहरण लीजिये—

(क) बी यू टी 'बट' होता है और पी यू टी 'पुट'

(ख) उच्चारण 'वीक' है किन्तु लिखा डब्ल्यू ई ए के या डब्ल्यू ई ई के जायेगा। 'शन' के लिये ऐस ओ एन या ऐस यू ऐन। 'क' के लिये के या सी अथवा सीके या सी-एच या क्यू यू का प्रयोग।

(ग) बीच में अक्षर हैं पर बोले नहीं जाते। जैसे 'नाइट' में पहले के भी है और बीच में जी एच।

(घ) कुछ शब्द ऐसे हैं जिनकी स्पेलिंग्स कभी याद हो ही नहीं

सकतीं। जैसे मिसलैनियस, मिसीसिपी या मिसाचुसैट्स।

(ङ) अंग्रेजी व्यक्तिवाचक (संज्ञा) नामों की स्पैलिंग्स तो ऐसी होती हैं जैसे भूचाल से अक्षर इधर-उधर हो गये हैं।

(च) सी एच 'क' के लिये भी और 'श' के लिये भी। जैसे करेक्टर और मशीन में।

इन मुसीबतों के अलावा हमारा हैंड राइटिंग ऐसा कि स्याही सूख जाने पर तो हम भी नहीं पढ़ सकते। औरों की तो क्या बिसात। फिर मेरे लिखे ऐ और डी में, यू और वी में, ई और ऐल में, आर और के में कोई अन्तर नहीं होता। एक ही समय की जुड़वाँ सन्तान मालूम पड़ती हैं।

अंग्रेजी माध्यम रहने पर भी हम पास कैसे होते चले गये इसके भी गुर थे। सर्व प्रथम तो हम इस बात का आसरा लेते थे कि प्रत्येक प्रश्न का उत्तर कम से कम आठ पृष्ठ का हो। यदि परीक्षक की समझ में न आये कि क्या लिखा है तो पृष्ठ संख्या देखकर ही उत्तीर्णांक दे दे।

दूसरे जो सही है, उसी को लिखना। जैसे अर्थ प्रसंग में 'दीज लाइन्स हैव बीन टेकिन फ्रौम' का लिखना। हिन्दी में लिखा जा सकता है प्रस्तुत गद्य खण्ड, निम्न सुन्दर मनहर पंक्तियाँ, ये चुना हुआ गद्यांश आदि, किन्तु गलत होने के भय से अंग्रेजी में परिवर्तन न कर सकते थे।

तीसरे घोटा लगाना अनिवार्य था। वाक्य के वाक्य रटते थे जिनको जब इच्छा हुई, प्रसंग पैदा किया, रटे वाक्य लिखे और उपसंहार किया। इसी प्रकार कई पंक्तियाँ लिख जाया करती थीं। एक रटे वाक्य का उदाहरण लीजिये—"फिजीकली फिट मैन्टली एफीसियेन्ट एण्ड इन्टैलैक्चुअली स्पिरिचुअल।"

जिसमें सन्देह हो उसे कभी न लिखना। श्री मुकुट बिहारीलाल अग्रवाल आठवीं कक्षा में पूछा करते थे, अगर मैं बाजार गया होता तो तुम्हारे लिये पुस्तकें अवश्य ले आया होता। मगर इसकी अंग्रेजी

तब तो तब, अब भी नहीं बता सकते। ऐसा वाक्य आज तक न लिखा। उस जमाने में तो एक वाक्य के बाद 'बट' 'देअर फोर' 'बिकौज' या 'एण्ड' लगाने के पश्चात् साँप ही सूँघ जाता था (आज ऐसी बात नहीं है।)

इन्टर के अंग्रेजी लिटरेचर का दूसरा प्रश्न पत्र था। मुझे किसी प्रसंग में रेगिस्तान की अंग्रेजी लिखनी थी। मगर मालूम न थी। उधर लिखना अवश्य था, नहीं तो सारा भाव मारा जा रहा था। समय बीता जा रहा था, अतः खड़ा हो गया। एक निरीक्षक गुज़रे, पूछा,

"क्या बात है ?"

"मास्साब रेगिस्तान" हम वाक्य पूरा न कर पाये।

"क्या बकते हो, बैठ जाओ" और हम बैठ गये। दूसरे निरीक्षक आये। हम फिर खड़े हो गए।

"क्या है" वे बोले।

"जी रेगिस्तान" हम वाक्य पुनः पूरा न कर पाये। निरीक्षक महोदय ने हमें घूरा। जैसे हम पागल हों अंग्रेजी लिटरेचर का पर्चा और हम निरीक्षक महोदय से कह रहे हैं, "जी रेगिस्तान" भला वह हमें पागल न समझे तभी आश्चर्य।

शायद ही आज तक रेगिस्तान की अंग्रेजी प्रयोग की हो। कभी-कभी घोटना भी धोखा दे जाता है। बी० ए० फाइनल में दूसरे दिन रात भर जागे थे। कुल ग्यारह पाठ थे जिनमें से नौ घोटे। परीक्षाभवन में शोर मचाया कि शेष दोनों आ रहे हैं। छात्रों ने शीघ्रता से उन्हें देखा। हम प्रसन्न थे किन्तु जब प्रश्न पत्र आया तो विश्वास रखिये वे ही दोनों विराजमान थे। और हम नौ पाठों को रो रहे थे। हम नहीं जानते कि किस प्रकार उन दोनों में शेष नौ के अंश ठूंस कर परीक्षा भवन से बाहर निकले।

किन्तु इस घोटने ने बड़ा साथ दिया है। जब हम प्रथम वर्ष में थे, तब हाईस्कूल की एक लड़की का ट्यूशन था। माध्यम वही अंग्रेजी।

हम उसकी किताबों की 'की' ले आये। रात भर घोटा लगाते थे। घण्टे भर की सामग्री तैयार करते थे, किन्तु वह लड़की बड़ी चतुर थी। एक बार बताया, वह याद हो गया। अतः कभी-कभी घण्टे भर का सामान पौन घण्टे में निबट जाता था। स्वतन्त्र रूप से तो हम अंग्रेजी एक मिनट भी नहीं पढ़ा सकते थे। अतः शेष पन्द्रह मिनट उसे कविता करना सिखाते थे। वह लड़की मुस्कराती थी और हम झेंपते थे।

एम० ए० में आकर तनिक चैन की सांस ली थी कि पुस्तकालय-विज्ञान की कक्षा में अंग्रेजी ने पुनः परेशान किया। माध्यम वही अंग्रेजी था। जीवन का अन्तिम द्वन्द्व-युद्ध था। साहस का सहारा लिया। पुस्तकें खूब पढ़ीं। वाक्य रटे, बड़े-बड़े शब्द छोड़ दिये। कुल मिलाकर एक चैप्टर ही तो छूट जाता था, जो बड़ी हानि नहीं थी। जो शब्द याद किए जा सकते थे, याद किये। करैक्टर को चैरेक्टर याद किया और मशीन को मचीन। फिर जो सवा दो रुपये की क्विक भर कर पार्कर फिफ्टी वन गोल्ड कैप मेड इन यू० एस० ए० से तनिक बड़ा और दूर-दूर लिखा तो बेड़ा पार और सैकिण्ड डिवीजन।

यों अब हम पहले से दुर्बल नहीं रहे, फिर भी साहस कम पड़ता है। वैसे बड़े-बड़े तीस मार खाँ शत-प्रतिशत शुद्ध अंग्रेजी लिख या बोल नहीं सकते। ईडियोमेटिक अंग्रेजी की जगह फ्रेजेटिक अंग्रेजी बोलते हैं। जो भी हो, हमारे सामने जब फाइलें आती हैं, उनकी अंग्रेजी उखाड़ लेता हूँ उनका अर्थ भी पछाड़ लेता हूँ, और अंग्रेजी में रिमार्क (जिस दिन से ये चलन हिन्दी में होगा उस दिन भाग्य खुल जावेंगे।) देते समय गणेश जी को प्रणाम कर लेखनी चला देता हूँ।



लड़का देखने गये

श्रीमती जी चाय देती हुई सुरमई आँखें नचाती हुई बोलीं, "आज तो इतवार है। मेरी छोटी बहिन के लिये कोई लड़का ही देख आओ। सुन्दर, सुशील, पढ़ा-लिखा और कमाऊ हो।"

"तो चार पति चाहियें। "कितना बड़ा" हँसकर हमने कहा।

"यही कोई २२ साल का।"

"२२ साल का एक न मिले तो ग्यारह-ग्यारह साल के दो कैसे रहेंगे ?"

"हटिये भी, आप तो मजाक करने लगे। सच, आज जाओ। काफी सयानी हो गई है। गरीब लोग हैं। अतः बिना दहेज के शादी करले, ऐसा देखना।" और फिर श्रीमती जी बड़बड़ाने लगीं, क्या जमाना आया है। गृहस्थी का सारा सामान दो, जिन्दगी भर मौज उड़ाने को लड़की दो, ऊपर से नकद नारायण भी दो।

"सच पूछा जाय तो शादी तो दूर लड़का देखना भी एक समस्या है। मेरे मौलिक विचार ये हैं कि हर शहर में एक 'वर-हाट' या दूल्हा-

बाजार' होना चाहिये, जहाँ अपने-अपने लड़कों को लेकर बाप दुकान खोला करें और ग्राहक यानी लड़की वाले सौदा पटाया करें।" पर श्रीमती जी ये क्यों सुनने लगीं।

न सही 'वर-हाट', पर लड़कों का बाजार नहीं है, यह कौन कह सकता है। आजकल लड़कों का भाव कितना बढ़ गया है यह भी किसी से छिपा नहीं है। इससे एक गड़बड़ी तो यह हुई है कि जापानी माल के भी जर्मनी दाम लगने लगे हैं। मतलब यह कि दूसरों से होड़ लगा कर दुकानदार माल (लड़कों) के अनुचित दाम माँगता है और ग्राहक देखता रह जाता है, किन्तु बहती गंगा जो ठहरी, प्रत्येक हाथ धोना चाहता है।

कपड़े पहन कर जो तैयार हुए तो सामने से लाला सुखदास आते दिखाई दिए। बेचारे लड़के के लिए मारे-मारे फिर रहे हैं और लड़के हैं कि सुबह के तारे हो रहे हैं। आते ही बोले—

"लेखक जी, चलिये कुछ लड़के देख आवें।"

"सुबह ही सुबह"

"क्या किया जाये ?"

"जो भी माल देखोगे बोहनी करनी पड़ेगी।"

"माल पसन्द भी तो आना चाहिये।" सुखदास जी हँसी में कह गये, किन्तु मुखमुद्रा ने उनकी हँसी का समर्थन नहीं किया। वे कितने परेशान हैं, ये चेहरे के दर्पण में स्पष्ट दिखाई दे रहा था।

"हाँ देखने में ग्राहक को स्वतन्त्रता है। ले, चाहे न ले। टेंट में क्या दबा ले चले हो ?"

"यही कोई दो हजार नकद दो तीन हजार और"

अभी चलो।" हम बोले तभी श्रीमती जी ने धक्का दिया, "जाओ भी, शायद अपना काम भी बने।"

पहला लड़का देखा। चौखटा तो ठीक था, किन्तु···

"तुम कितने भाई हो ?"

"जी, अकेला हूँ।"

"ऐं", सुखदास चौके, "बहिनें कितनी हैं।"

"टीन"

"टा बाट" (शाबाश) अपने राम न रुक सके "और बाप ?"

"एट हैं और टिटने होंगे।" लड़का सम्भवत: क्रोध में आ गया।

"काफी कम हैं।" हमने बहुत धीमे कहा और खिसक आये।

दूसरा देखा। ५०००) नकद तय हो जाने पर नायक के दर्शन हुए। आशा-लता कुछ हरी-सी दिखाई दी। लड़का बी० ए० था किन्तु मुलाकात हुई तो लगा कि पहाड़ खोदने पर चुहिया ही हाथ आई, वह भी मरी हुई। काले होठों की दरार से एक दांत बाहर जैसे बादल की कोंख में से बिजली की दुम निकल आई हो। काले चेहरे पर चेचक के दाग, मानो राख पर ठंडे पानी के छींटे मार दिए हों, सिर्फ धनी पिता की सन्तान के कारण ये भाव थे। सुखदास जी के उफने हुए दूध में भी जैसे उतार आ गया।

उन्होंने हमें खिसकाना चाहा, परन्तु हमने रोका और हमारा इशारा पाने पर वे बोले, "तो आप बी० ए० हैं।"

और उत्तर में लड़के के श्याम चेहरे पर लाज की अरुणिमा उभर आई, होंठ कुछ मुस्कराये और अपने राम ने इस दृश्य की पूर्णोपमा में आल्हा की एक पंक्ति मन ही मन गुनगुनाई—'काले बादल की लाली में जैसे कला कबूतर खाय।"

"जी···जी···जी हाँ।"

"लेखक जी" सुखदास जी का जैसे दम निकल गया।

"तो···तो आप बी···बी. ए. के सभी प्रश्नों के उत्त···उत्त···तर दे सकते हैं।" अब अपने राम बोले।

"जी···जी हाँ मैंने बी. बी···बी. ए. पास किया है। मे···मे··· ·····रे पास सन···स···सनद है।" ऐसा कहते-कहते लड़के की एक आँख बन्द हो गई।

"या···यानी कि आ···आप सभी···प्र··· प्र···"

"जी···जी···जी हाँ।"

"अ···क्या···स···सब्जेक्ट्स·····थे···आ···आपके ?"

"ह···ह···ह हिन्दी···ऐ···ऐ···ऐकोनोमिक्स···औ···औ···और पोलिटिक्स।"

"जा···जा···जायसी की रहस्यभावना क्या है और क···क··· कबीर की।"

लड़का आकाश में तारे टटोलने लगा।

"र···रस परिपाक कै···कैसे होता है ?"

"य···यह स · सवाल चौ···इस पर···छो···छोड़ा।"

"का···काव्य में अ···अलंकार का म···म···महत्व बताइये।"

"जी···उस···स···स···समय तो याद थे पर अ···अ···।"

"वा···वा···ह्वाट···इज···मनी···थ्यौरी ?" अपने राम गरजे।

"आ···आ···ा···ा···ा···प समय तो दीजिये।" लड़का लगभग चीख पड़ा। "या···याद करने को।"

अधिक देर बात नहीं की जा सकती थी, कारण सुखदास जी कोरे थे और हमने दूसरी जवान सँभाल ली थी। अतएव बिना लड़के के बाप को सूचना दिये चल दिये। यदि अपने राम को 'पौलिटिक्स' का ज्ञान होता तो अवश्य प्रश्न करते।

"न···न···नमस्ते" लड़के ने दोनों हाथ जोड़े।

"नमस्ते !" सुखदास ने घास काटी।

"न···न···मस्ते !" अपने राम पूरा बोल भी न पाये थे कि सुखदास जी ने खींचकर सड़क पर ला खड़ा किया। और जबर्दस्ती रोकी हुई हँसी का बाँध तोड़ दिया।

तीसरा देखा। वह भी बी. ए. था। छूटते ही उसका जनक बोला, "मेरा लड़का बी. ए. है। बी. ए. तक का खर्च देना पड़ेगा।" सुखदास के रोकने पर भी हमने क्रोधपूर्वक कहा, "और इनकी लड़की एम. ए. है। अपने लड़के की बी. ए. घटा दीजिये। बाकी बची दो कक्षाओं का व्यय आप देंगे ?"

वर महोदय के पिता हमें ताकने लगे। सुखदास जी वहाँ से भी

खींच लाये और मुझसे वायदा करा लिया कि अब की बार हम न बोलें। हमने हाँ कर दी।

अब एक अच्छे वर-पिता के पास पहुँचे।

"पक्की करने के १००) लेंगे।"

"देंगे" सुखदास जी बोले।

"गोद भरने में १०००)"

"देंगे" सुखदास जी ने पुनः उत्तर दिया।

"सगाई पर ३०००)"

"देंगे" हमने कहा।

"सारे तीज-त्यौहार, होरी-दिवारी, भात-छोछक..."

"अवश्य।"

"विलायत जाने का २०००) किराया मात्र।"

"देंगे।"

"अब तक की पढ़ाई और शेष रही, ५०००)"

"वह भी देंगे।"

अब वर-पिता चुप थे। पर हमने कहा, "आप कुछ भूल गये जी।"

"क्या ?" वर-पिता ने साश्चर्य कहा। सुखदास ने भी उत्सुकता से हमारी ओर देखा।

"२००) और देंगे।"

"किस बात के ?"

"लड़के के क्रिया-कर्म को, आखिर वह मरेगा भी तो।" कहते मैं सुखदास को खींच लाया।

अब हमने घर चलने की ठानी, किन्तु सुखदास बोले, केवल एक और। हमें कुछ पल्ले पड़ेगा। आज श्रीगणेश ही ऐसा हुआ था। अतएव चले। वह सुन्दर था, किन्तु छोटा। अतएव लड़के से पूंछ बैठे, "मानी बताओगे ?"

"अवश्य", उस लड़के ने कहा और अपने राम को लगा कि बाप का इसमें हाथ है।

"पंकज माने" हमने पूछा ।

"पंकज माने" लड़के ने सीधा हाथ हिलाकर दुहराया । उसके होंठ कुछ कहने को काँपने लगे । वह अपने बाप की ओर ताकने लगा । और बाप ने हमसे छिपाकर एक ओर अँगुली से इशारा किया । हमने देखा कि संकेत की ओर एक तालाब था । तालाब में कमल खिला था और कमल के पास एक बत्तख तैर रही थी ।

"पानी, पंकज माने पानी ।" लड़का खुश होता हुआ बोला । अपने राम मुस्करा उठे, "फिर बताओ ।"

अब के बाप ने फिर इशारा किया तो लड़का एकदम चीख उठा, "बत्तख, पंकज माने बत्तख ।"

बाप के मस्तक पर बल पड़ गये । मुट्ठियाँ बँध गई । हम फिर मुस्कराये, "फिर सोचो, कोई बात नहीं, अबकी बताओ ।"

अब की बाप ने पुनः क्रोधपूर्वक तालाब की ओर अँगुली उठाई । अपने राम ने स्वयं देखा कि अँगुली की सीध में तालाब के किनारे एक ताड़ का पेड़ खड़ा है ।

"ताड़ का पेड़, पंकज माने ताड़ का पेड़...बस पंकज माने ता...."

लड़के ने बात पूरी भी न की थी कि हम मुड़े और उधर लड़के पर तड़ातड़ ओले-से चाँटे पड़ने लगे, "साले, अब तक तो पानी के भीतर था, अब पानी से बाहर भी निकल आया ।"

"बेचारा लड़का" हमने सहानुभूति दिखाई ।

"अब घर चलो" सुखदास बोले, "आज और नहीं देखेंगे ।"

"श्री गणेश ही ऐसा था ।" अपने राम बोले और घर की ओर चल दिये । श्रीमती जी को सुनाने के लिये आज के रोजनामचे को मन ही मन संक्षिप्त करने लगे ।





नाम-माहात्म्य

जब भी मैं अपने घर से निकलता हूँ तो गली के सामने ही एक धर्मशाला पड़ती है जो अभी ही बनी है। उस पर खुदा हुआ है "प्राचीन धर्मशाला सन १६५६" इस वैधर्म्य पर मेरी निगाह न जाती, किन्तु एक दिन एक कालेज के मैदान में छात्रों की दौड़ हो रही थी। कौतूहल-वश मैं भी खड़ा होगया। एक छात्र सर्व प्रथम आया। किसी ने नाम पूछा। उत्तर मिला, 'घसीटा' दौड़ में प्रथम आने वाले का नाम सुनकर

हँसी आगई। घर आते ही धर्मशाला के वैधर्म्य को भी समझा। और अब तो चारों ओर नाम और काम में विरोधाभास दिखाई पड़ रहा है। आवाज फटे बाँस सी है, किन्तु बहिन बड़े प्यार से पुकारती है, "भैया मुरलीमोहन।" दर-दर की भीख माँग रहे हैं, किन्तु नाम है 'महीपाल' या 'नरेश'। आकाश में छेद करने वाली अठारह हवेलियाँ खड़ी हैं, किन्तु मालिक को माँ कभी-कभी फटकार देती है, "अरे फकीरा !" छटाँक भर दूध नहीं पचता। एकदम खाट की शरण लेते है, किन्तु डाक्टर नब्ज पकड़ते समय कहता है, "कहो अंजनीकुमार कैसी हालत है ?" यदि अंधेरे में खड़े हो जायें तो अस्तित्व का पता न चले पर दादी ने बड़े प्यार से नाम रखा है, सूरजभान। आँखों से ढीढ़ चुवाती है, किन्तु हाईस्कूल फाइनल के सार्टीफिकेट में नाम लिखा है, 'पंकजलोचन'। यों आपकी एक-एक पसली गिनी जा सकती है और चेहरे पर झाड़ू सी फिरी रहती है पर आप बसन्तकुमार के नाम से प्रसिद्ध हैं। आप अखबार बेचते हैं, या कभी-कभी ठेला चलाते हैं, पर सास बड़े आदर से पुकारती है, 'लाला रामचन्द्र जी'। इनसे मिलिये। एक भी हाथ साबुत नहीं है, पर हैं आप 'गिरधारी'। सोते हुये कुत्ते से डर गये तो क्या हुआ ? हैं तो आप 'जंगबहादुर'। यों इनकी अभी चौथी शादी हुई है, पर नाम है 'हनूमान' या 'भीष्म'। यों तो आपकी सात पीढ़ियाँ क्वारी मर गई; किन्तु कक्षा में टीचर तो 'हृदयेश्वर', पुकारता है और आप खड़े होकर कहते हैं, 'यस्सर'।

कहाँ तक गिनायें ? कितने ही बूट पालिश करने वाले 'हरस्वरूप' मिल जायेंगे और कितने ही गारा ढोने वाले 'विद्यासागर'। फिर पुरुषों तक ही यह बात सीमित हो, सो बात नहीं। नारी-रत्नों पर भी दृष्टि-प्रकाश डालिये। पहले आपको लीजिये किसी ताँगे वाले से बैठने को यदि कहें तो या तो वह प्रति मन की दर से दाम माँगेगा या कम-से-कम चार बार में ले जायेगा, किन्तु नाम है 'कुसुम लता'। अब इन्हें लीजिये, वैसे आपसे घर का तवा अधिक गोरा है, किन्तु चन्दा लेते समय हस्ताक्षर करती हैं, 'पूर्णिमा', 'रजत', 'रश्मि' या 'उषा'। इन्हें

देखो, मिसीसिपी रिवर को आप दाल की कोई किस्म समझेंगी, पर नाम है 'सरस्वती'। चेहरा एकदम भूरा भक्क है, पर वास्तव में है आप 'श्यामकली'। यों आप उछल-उछल कर केवल कंचुकी और 'हाफ निकर' पहने बैडमिंटन का फाइनल जीत लेती हैं, किन्तु पुरस्कार देते समय आपको पुकारा जाता है, मिस 'लज्जावती'। यों आपकी आँख में टेंट है, किन्तु श्वसुर बड़ी मीठी बोली में कहता है, "सुनयना बहू! साग में नमक तनिक कम है।" जो सदैव घर में पड़ी रहती है वे 'शैल कुमारी' या 'किरण' कहलाती हैं।

कितनी ही 'लक्ष्मियाँ' आपको युद्ध में रत मिल जायेंगी। कितनी ही कंडा बीनने वाली 'शारदा' होंगी। कितनी ही चरखे के स्वर को मात करने वाली 'वीना' मिलेंगी। कहाँ तक गिनाया जाये, ये तो कुछ नमूने हैं। मंशा यह है कि हमारा जैसा नाम है वैसा काम भी करें या सुकर्म कर नया नाम रख लें। हम में से बहुत से 'कर्मचन्द' हैं जो खाक काम नहीं करते और बहुत सी 'कर्मवती' हैं जो अपनी जगह से हिलना नहीं जानतीं।

नामों का कला पक्ष देखना हो तो विवाह-शादियों के अभिनन्दन पत्र देख जाइये। 'पारवती' की 'गणेशचन्द' से शादी हो रही होगी और 'कमला' का हाथ 'ब्रह्मदत्त' पकड़ रहे होंगे। 'राधा' का पाणिग्रहण 'नन्दराम' कर रहे हैं तो 'कन्हैयालाल' को सौभाग्यवती 'यशोदा देवी' अपना पति स्वीकार कर रही हैं। 'आदर्श कुमारी' के लिये 'छीतरमल' बरात लाये हैं तो 'इमरती देवी' 'नलिनीरंजन' की प्रतीक्षा में हैं। यही नहीं जिस समय ये अभिनन्दन-पत्र लिखाते आते हैं उस समय देखिये कि क्या-क्या प्रयोग करने को कहा जाता है। कहेंगे, "ऐसी कविता करो कि 'घूरेमल' स्वागत कर रहे हों।" "घूरा ही क्या कम है जो मल और लगा दिया और वह भी स्वागत करे। धन्य है" हम मन में सोचेंगे। "श्री हनूमान प्रसाद स्वर्ग से फूल बरसा रहे हों, वैकुंठी अर्घ्य दे [illegible] हो, नथिया बलायें ले रही हो, धीरज लाल पंखा कर [illegible] न जाने क्या-क्या करेंगे। बिना अर्थ अनर्गल [illegible]

मायें भी ये ही सोच लाते हैं। अस्तु,

इन नामों की महिमा का अभ्र-भेदी झण्डा लेकर गोस्वामी तुलसीदास जी के श्री-चरणों में शरण ली तो निम्न पंक्तियाँ निकलीं—

"रहा दौड़ में प्रथम 'खचेरा'। 'वंशीधर' स्वर बाँस फटेरा ॥
'कुलदीपक का रंग तवा सा। मूर्ख शिरोमणि 'वेद प्रकासा' ॥
'नाहरसिंह' कूकर से डरते। 'प्राणनाथ' रह क्वारे मरते ॥
खड़े महल शत किंतु 'फकीरा'। चुभा शूल चीखे 'रणधीरा' ॥
'भूपति' भीख-पंथ का राही। देत 'युधिष्ठर' झूँठ गवाही ॥
'सूरदास' बेचते ममीरा। बिना हाथ फिर भी 'भुजवीरा' ॥
सदा दुखी 'आनन्द कुमारा' नाम कथा इस भाँति अपारा ॥

दोहा—दूध न पचता कब्ज से, 'भीमसेन' बीमार।
काने हैं 'पंकज नयन', 'हरिश्चद' मुख्त्यार ॥

छः मन की है 'फूलकुमारी'। घास बेचती 'राजदुलारी' ॥
'सरस्वती' 'विद्या' अति सुन्दर। काला अक्षर भैंस बराबर ॥
'मधु' 'माधुरी' 'सुधा' कटु बैना। नैनहीन सुन्दरी 'सुनैना' ॥
'शान्ति' और 'सन्तोष' सदा ही। लड़ें, कीजिये लाख मनाही ॥
टी-बी में मर गई 'बसन्ती'। 'सदा कुँवरि' के नाती-पंती ॥
भोंड़े अंग अरसिका 'कविता'। रजनी सी अति श्यामल 'सविता' ॥
'गिरिबाला' गज घूँघट वाली। नाम जगत की दशा निराली ॥

सोरठा—'लज्जावती, सिहान, भीगे बेदिंग सूट में।
तम से भय अति खात, 'दुर्गा', 'सावित्री', 'उमा' ॥"



मनुष्य के दिल पर क्या लिखा है ?

मनोविज्ञान में प्रथम श्रेणी लेकर एम. ए. किया था। यह धुन सवार हुई कि क्या मनुष्य वही कहता है जो उसके दिल में होता है ? काश कि मनुष्य के दिल के ऊपर एक छोटी-सी खिड़की होती जिसे

खोल कर उसके दिल पर क्या लिखा है, यह पढ़ा जा सकता, तो झूँठ-सच की कितनी समस्याएँ हल हो जातीं। पर ईश्वर से शिकायत कौन करे? समस्या का सूत्र हाथ न आता था कि एक रात सहसा एक फार्मूला पल्ले पड़ा। जिसे मैंने भी एप्लाई किया। बात यह हुई कि कोई पौराणिक चित्र देख रहा था, क्या हुआ कि हीरो ने कंकरीला राग कुछ ऐसा दम लगाकर गाया कि धरती हिल उठी, आकाश फट पड़ा और भोले भगवान् शंकर वरदान देने आ टपके। मैं हीरो को पहचानता था। उसने मेरे साथ ही नंगे होकर बरसात में ओले बीने थे। वह क्या उसकी सात पीढ़ी भी नहीं गा सकती थीं। समझ गया कि बैक ग्राउन्ड है। तुरन्त हॉल से बाहर निकला और बाजार से वह रिकार्ड खरीदा। रात भर वह गीत ३९ के पहाड़े की तरह याद किया और तारों के डूबने से पहले ही शहर से दूर शिव मन्दिर में जाकर वह रिकार्ड चढ़ा दिया और स्वयं भी भगवान को शत-प्रतिशत धोखा देने के लिये होंठ चलाने लगा। गीत समाप्त होते ही धरती हिलती-सी लगी, आकाश बरसने-सा लगा और मैंने देखा कि साक्षात् भोले भगवान् शंकर मुझसे वरदान माँगने को कह रहे हैं।

मैं बिना कोट-पैण्ट का ध्यान दिये धरती के समानान्तर हो गया, "भगवान् मुझे ऐसी शक्ति दो जिससे यह जान सकूँ कि मनुष्य के बात करते समय उसके दिल पर क्या लिखा है?"

रटी रटाई 'तथास्तु' कह कर भोले शंकर छिप गये। मैंने रिकार्ड संभाला और मुड़ा कि युवक पुजारी मन्दिर में झाड़ू लगाता दिखाई दिया। शिव आरती उसके मुख से निकल रही थी, किन्तु मुझे उसके दिल की बात दिखाई दी, "आज यदि छदम्मो एकान्त में मिली तो नहीं छोड़ूँगा।"

"वाह भगवान् खूब" मुझे वरदान पर विश्वास हो गया और मुस्कराता चल दिया। तभी कुछ छात्र उधर से निकले। सिगरेट वाले हाथ पीठ पीछे कर उन्होंने सिर नवाये। एक छात्र मना रहा था कि जो पढ़ा है वही आये और शेष छात्र मना रहे थे कि नकल

करते समय पकड़े न जायें।

पार्क में जाकर एक बेंच पर बैठ गया। पास ही कुछ विद्यार्थी और एक प्रोफेसर वार्तालाप में निमग्न थे। विद्यार्थियों के दिलों पर साफ लिखा था कि जाओ बच्चू हमने उखाड़ा नहीं, सड़क पर नहीं पकड़ा वरना कालिज में टिक नहीं पाते और प्रोफेसर का दिल कह रहा था कि मुझे पहली तारीख को रुपये चाहियें। लड़के पढ़ते हैं या नहीं, कोर्स पूरा होता है या नहीं, इससे मुझे क्या ? मैं लड़कों का बुरा नहीं बनूँगा।

तीन युवक मेरे पास से गुजरे। उनके दिल कह रहे थे कि आज का टहलना बेमजा रहा। वे तीन लड़कियाँ तो आईं ही नहीं। थोड़ा दूर खड़ा एक वृद्ध एक लड़की को घूर रहा था। उसके दिल पर लिखा था, "काश कि मेरा तारुण्य लौट आता और यह बाला मुझे समर्पण करती।"

मैं उठा और दूसरी बेंच पर जा बैठा। दो व्यक्ति ब्याह ठहरा रहे थे। लड़की वाला अपनी कन्या को रूप-रंग में अद्वितीय कह रहा था जब कि उसके दिल पर लिखा था कि सरसुती का बायाँ फेफड़ा कमजोर है, एकदम कुरूप है, बे-पढ़ी है, स्वभाव में कर्कशा, माँ से लड़ती ही रहती है। उधर वर-पिता कह रहे थे कि मुझे केवल गुणवती सुशील लड़की ही चाहिये। मुझे रुपये का क्या करना। वह तो हाथ का मैल है, किन्तु उसके दिल पर स्पष्ट लिखा था कि "अगर पाँच हजार नकद दें तो कानी से भी ब्याह करने को तैयार हूँ। कालीचरन ही कौन-सा सुन्दर है, जो मुझसे लड़ेगा।"

मन ही मन मुस्कराता एक कुंज की छाया में पहुँचा और सो गया। उठा तो नौ बज रहे थे। मित्र शिवराम के घर चल पड़ा। उसकी पत्नी टी. बी. से बीमार थी। बेचारा अभी से दुखी हो पागलों की सी बातें कर बैठता था। देखा, पत्नी कराह रही थी और शिवराम उसे शीघ्र ठीक हो जाने का विश्वास दिला रहा था। पर उसका दिल कह रहा था, थोड़े दिन में यह मर जायेगी तब रमा मुझसे विवाह को तैयार

हो जायगी । सुन्दर हूँ, स्वस्थ हूँ, तीन सौ माहवार कमाता हूँ, उसकी गोरी-गोरी भरी-भरी कलाइयाँ......'और शिवराम का हाथ उस रोगिणी के माथे पर घूम-घूम कर शीघ्र स्वस्थ होने का आश्वासन दे रहा था । मुझे क्रोध आया किन्तु चुप कर गया । आज मैं कुछ न कह कर देखना भर चाहता था ।

अब मैं दयाराम के घर चला । मुझे विश्वास था कि वह रात को ही मर गया होगा। राह में एक सिपाही से जा टकराया । वह जो मुझसे अबे-तबे बोला तो मेरे मुख से निकल गया, "रात को तो खूब चोरी कराई, चौथाई हिस्सा मार दिया ।" सिपाही की मुख-मुद्रा दर्शनीय थी । चलते-चलते एक शरीफ की जेब से मैंने बटुआ भी निकाल लिया यह कहते हुये, "पड़ौसी की ही जेब साफ कर दी" वह बेचारा एक ओर खिसक गया ।

मेरा अनुमान ठीक निकला । दयाराम मर चुका था । घर में कुह-राम मचा था, किन्तु असल में सच्चे मन से दयाराम की लड़की ही रो रही थी । शेष सब स्वार्थों के कारण । पड़ौसी रोते-रोते सोच रहे थे कि शीघ्र घर जायें । दो एक तो प्राणी की नश्वरता समझाते हुए घर का सामान ही उठा ले जाने की ताक में थे । दयाराम की पत्नी रोते-रोते चिन्तन कर रही थी कि बीमा के दस हजार मिलेंगे, देवर के साथ न रहूँगी । पाँच हजार में लड़की का व्याह और पाँच हजार मेरे शेष जीवन को पर्याप्त हैं । हाय ! बीमा बीस हजार का न हुआ । न जाने किस कुघड़ी में मैंने ही मना कर दिया था पर यह भी क्या पता था कि इतनी जल्दी मर जायेंगे । उधर आठ-आठ आँसू बहाते दयाराम का छोटा भाई सोच रहा था कि भाभी से बीमा के रुपये कैसे निकलवाऊँ । दुकान चमक उठेगी ।

दयाराम के जिगरी दोस्त सुरेश बाबू हार्दिक दुख प्रकट कर रहे थे । लोगों से अपने जीवन की भारी हानि का दावा कर रहे थे । मगर उनके दिल पर लिखा था कि दयाराम के उधार वाले रुपये न देने की खुशी में आज बारह बजे का 'शो' नहीं छोड़ूँगा । अभी ढाई घण्टे

शेप हैं। जयदेव के यहाँ पुत्र होने की वधाई देता हुआ रायल टाकीज पहुँच जाऊँगा।

मेरा मन बड़ा दुखी हुआ। आदमी कितना स्वार्थी और दिखा-वटी है। बाजार से लक्ष्मी के लिए एक धोती लेता हुआ सीधे घर जाने की सोची। हरिश्चन्द्र बजाज मुझसे कह रहा था, "तुम तो अपने ही हो भैया, गंगा कसम, आठ रुपये की धोती है। चार आना फुटकर खर्च और चार आना नफा के। विश्वास न हो तो बीजक दिखाऊँ" कहते हुए वह बीजक लेने उठा, किन्तु मैंने उसे रोका और उसके दिल की ओर गहरी दृष्टि डाली। आश्चर्य हुआ यह जानकर कि धोती तो छः रुपए की ही थी और हरिश्चन्द्र सुबह-सुबह गंगा कसम खाकर बीजक दिखाने को उठ रहा था।

धोती पटक मैं घर की ओर चल दिया। माँ ने बड़े प्यार से उला-हना दिया। कहाँ थे अब तक ? क्या दफ्तर से छुट्टी ले ली। मैंने माँ के दिल की ओर ताका। नेह से लबालब भरा था। माँ को प्रणाम कर अन्दर पहुँचा। लक्ष्मी अपने मायके के शहर के किसी तरुण से बात कर रही थी। उसके हृदय पर साफ गुदा हुआ था कि अब मैं अपने इकलौते पति से ऊब चुकी हूँ। एक दम बासी हो गये हैं वे। तुम मुझे भगा ले चलो। मैं अपने सारे जेवर अपने साथ ले चलूँगी।

मैंने अब तक शान्त रह कर दुनिया के झूँठे व्यापारों को देखा था किन्तु इस समय क्रोध आये बिना न रहा। लक्ष्मी का हृदय जानकर वह वरदान अभिशाप सा लगा। उफ् कितना स्नेह करती थी मुझे। सब बनावटी निकला। मुझे देखते ही आदत के अनुसार लक्ष्मी ने मेरे गले में हाथ डालने चाहे तभी मैंने एक जोरदार थप्पड़ रसीद किया। थप्पड़ का लगना था कि लक्ष्मी सहित सारा घर घूमने लगा। मैंने थप्पड़ मारने को पुनः हाथ उठाया कि लक्ष्मी ने उसे पकड़ लिया, "यह क्या कर रहे हो जी ! मेरे ही थप्पड़ रसीद कर दिया। मेरा अपराध ?"

मेरी आँख खुल चुकी थी। फूल-सी मुस्कराती लक्ष्मी मेरे ऊपर झुकी अपने बाँये कपोल को सहला रही थी। मैंने उसके दिल की ओर

देखा, न कोई खिड़की खुली और न कुछ लिखा दिखाई दिया।

"बीस बार कहा है कि सैकिन्ड शो न जाया करो, घोड़ा बेचकर सो जाते हो।" लक्ष्मी मुस्करा रही थी और मैं सोच रहा था कि क्या मनुष्य के दिल पर लिखे को जानने का वरदान वास्तव में मिल सकता है ?

झुकी लक्ष्मी को मैंने और भी झुका लिया।



जीवन के नये मान-दण्ड

[ये डायरी के छः पृष्ठ अवश्य हैं, किन्तु मेरी डायरी के नहीं। सच तो यह है कि जब थैले को पटना की मिर्चें निकालने के बाद फाड़ने लगा तो लिखे पर दृष्टि गई और वह थैला समतल होकर आपके समक्ष है। निश्चय है कि इन पत्र-पैरा-ग्राफों में जीवन के नये मान-दण्ड हैं। पटना की मिर्चों का भी स्वाद है, यह स्पष्ट हो जायेगा।]

(१)

अनीता, मेरी समस्या सुलझ गई है और इस खूबी से कि मैं

भी खुश हूँ, मुकेश भी जीवित है, और हमारा प्रेम भी फल रहा है। बात यों हुई कि जब मुकेश प्रेम में असफल होकर नदी में कूद पड़ा तो मेरे इशारे से वह तैरकर निकल आया और फिर मेरे प्रस्ताव को मान गया। आज मैं बावन वर्षीय लक्षाधीश की पत्नी हूँ। मेरी दोनों सपत्नियों के सन्तान नहीं है। मेरे अवश्य होगी क्योंकि मुकेश सहायता करेगा। मुकेश इसलिये जीवित है कि उसे मैंने ४५०) मासिक पर अपने पति के यहाँ नौकर रखवा दिया है। अनीता! मेरी उमर बाइस साल है। अधिक से अधिक दस वर्ष बाद मैं विधवा हो जाऊँगी फिर अगर मुकेश चाहेगा तो समाज-सुधारक भी कहला सकेगा। मैं समझती हूँ कि योजना के इस युग में मेरी योजना ठीक है और बिना विदेशी सहायता के सफल होगी। हाँ, तुम्हारा क्या हुआ? समाज-सेवा में कूद पड़ो या साहित्य-गोष्ठियों में भाग लो। उचित वर मिल जायेगा। मेरे लायक काम हो, लिखना।

(२)

देखो जी! अगर तुम अपने वायदे से मुकरे तो हालत खस्ता कर दूँगा। और फिर दर-दर भटकते फिरोगे। तुम्हारे नालायक लड़के को फर्स्ट क्लास ही नहीं दिलवाई, आई० ए० एस० में भी ला खड़ा किया है। अब तुम मेरी लड़की से शादी नहीं करोगे तो इण्टरव्यू या मैडिकल टेस्ट में टोटली अनफिट करा दूँगा। और यदि शादी कर लोगे तो मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि तुम्हारे दूसरे बेवकूफ लड़के को भी कलक्टर बनवा दूँगा। शादी इन्टरव्यू से पहले होनी चाहिये।

(३)

मैं करता भी क्या? मैं बेकार, दो बहिनें, बूढ़ी माँ और पास पैसा नहीं। बेकारी को दूर करने के लिये मैंने शादी कर ली। जयश्री २५०) मासिक कमाती है। मुझसे छः वर्ष बड़ी है। रंग काला है। सामने के दो दाँत तनिक बड़े हैं, किन्तु फैशन से रहती है। हाई सोसायटी है उसकी। जब अंग्रेजी बोलती है तो अच्छे-अच्छे देखते रह जाते हैं। न चाहने पर भी एक बच्चा होगया। जयश्री और भी प्रसन्न है।

उसका कहना है कि अब उसे विश्वास हो गया है कि मैं तलाक नहीं दूँगा। वह मेरी भी नौकरी लगवा देगी। बहिनें पढ़ रही हैं। माँ पाव भर दूध रोज पीती है। कविता करना स्वयं बंद हो गया है। कब आ रहे हो?

(४)

मेरी प्रैक्टिस नहीं चल रही, मनोज। नया हूँ न, इसलिये। पास पैसा नहीं, अतः दुकान में शो नहीं। सोचता हूँ जो दस हज़ार कैश दे उसकी लड़की से शादी कर लूँ। आदर्श विवाह के अरमान समाप्त हो गये। उस रुपये से दुकान की टीमटाम बन जायेगी।

कुछ दिनों से गुप्त-रोग-विशेषज्ञ का विज्ञापन कर रहा हूँ। नवयुवक, विशेष-कर छात्र समूह मेरी सहायता कर रहा है।

मैडिकल सर्टीफिकेट देकर भी कुछ आय हो जाती है।

(५)

भाई विष्णु! तुम मुझे दोष नहीं दे सकते। यह सच है कि मेरे एकमात्र पुत्र की तीनों पत्नियाँ क्रमशः आईं और उसी क्रम से शीघ्र ही इस असार संसार से चली गईं। मैं भाग्यवादी हूँ; अतः यदि उनका इलाज कराता तो वे बच जातीं, ऐसा मैं नहीं मानता। स्पष्ट है कि दुनिया में इलाज कराने वाले ही अधिक संख्या में मरते हैं। अपनी दोनों लड़कियों का भी तो इलाज नहीं कराया, परन्तु वे कहाँ मरीं? लड़के की तीनों शादियों में जो आया वह कम्बख्त लड़कियों की शादी में चला गया। अब घर में भी कुछ हो, इसलिये चौथी शादी करनी ही पड़ेगी, फिर मेरे पास मेरे वंश का इतिहास है, कि इस खान्दान में प्रत्येक के एक ही पुत्र होता है और उसकी कम-से-कम छः शादियाँ होती हैं। मेरी केवल पाँच हो पाई इससे मन ही मन लज्जित हो जाता हूँ।

तीसरी बहू को अपवाद है कि हममें से किसी ने जहर दे दिया। कुछ यह कहते हैं कि उसने आत्महत्या कर ली। मुझे नहीं मालूम कि असल बात क्या थी। जो हो गया उस पर क्या रोना? मैं तो भाग्य-

वादी हूँ। ईश्वर की इच्छा से ही सब कुछ होता है। पुलिस अवश्य आई थी, और कुछ रुपये भी ले गई थी, कारण मुझे नहीं मालूम। केस को दबाने आई थी या व्यर्थ के झूँठे झंझट से बचा गई, पता नहीं। हाँ, समाज ने इसे नहीं माना, या मान कर भी अंधा है। शादी करने वाले अब भी आते हैं।

जो भी हो, मेरी निगाह में दो लड़कियाँ हैं। मुझे देखना है कि आगे-पीछे दोनों की मेरे ही पुत्र से शादियाँ हों। देखो क्या होता है।

मैं तो भाग्यवादी हूँ। बिना परमात्मा के संकेत के पत्ता भी नहीं हिलता।

(६)

मैं वकील भी बन सकता था और डाक्टर भी किन्तु प्रोफेसर ही क्यों बना, अभी बताऊँगा। मेरे ख्याल से वकीली और डाक्टरी दोनों में परिश्रम है। वकील तो जमीन आसमान के पुलावे बनाता है और डाक्टर रात-दिन मारा-मारा फिरता है। फिर किसे मालूम कि ये पेशे चलते ही, परन्तु प्रोफेसरी में न परिश्रम है और न कम आमदनी। वेतन है, इनविजिलेशन है, एक्जामिनरशिप है। इसके अतिरिक्त जो प्रतिभाशाली छात्र नोट्स लिखते हैं, उन्हें अपने नाम से निकलवा देता हूँ। काफी बिकते हैं। कुछ छोटे और नये अध्यापक अपनी मौलिक रचनाओं पर मेरा नाम डलवाने के अधिकार खरीदते हैं। वेतन-वृद्धि का आन्दोलन तो द्रौपदी का चीर होता है।

भैया !, आराम और मौज कितनी है, इसका अन्दाज़ लगाओ। मार्च से परीक्षा शुरू हो जाती है, अतः मार्च, अप्रेल, मई, जून तो यों गये। कालेज खुलने तथा नये परिचय में, पुरानी याद ताज़ा करने में जुलाई गई। अक्टूबर दिवाली और दशहरा में बीता। दिसम्बर बड़े दिन की छुट्टियों और छमाही परीक्षा में समाप्त हुआ। शेष पाँच महीनों में से कम-वेशी एक महीने के इतवार गये। समूचे वर्षाकाश में स्वागत समारोह, विदाई समारोह, मरण, निरीक्षण आदि चमकते सितारों की भाँति बिखरे हैं, फिर अपनी कैजुअल लीव हैं, मैडिकल लीव हैं।

तनिक सोचो प्राचीन काल में छात्र कुछ भी नहीं देते थे और ज्ञान-प्राप्ति का एक क्षण भी नहीं छोड़ते थे, और आज छात्र अपने अभिभावक का दिवाला निकाल देते हैं फिर भी अध्यापक को पढ़ाने नहीं देते, और स्ट्राइक के चक्कर में रहते हैं।

हाँ, एक दुख है। वह यह कि धीर-गम्भीर और ईमानदार अध्यापक की भी कोई प्रशंसा नहीं होती। छात्र प्रभावित होते भी हैं, किन्तु साथी पीठ पीछे मूर्ख सिद्ध करने में पीछे नहीं रहते।

ये शिक्षाप्रणाली देश की अवनति की प्रबलतम सहायक है।





मैं भला कभी झूँठ बोलता हूँ !

झूँठ न बोलना मेरा खान्दानी पेशा है और यह तब से चला आ रहा है जब से कि देव-सृष्टि के नष्ट हो जाने पर मनु महाराज ने प्रथम मानव के रूप में इस धरा पर पहली चौकड़ी भरी थी। जब भी कभी हमारे खान्दान में कोई जरा भी झूँठ बोलने की कोशिश करता है तो दूसरा उसे डाँट देता है, चाहे वह कितना भी छोटा क्यों न हो। उदाहरण लीजिये। इस बात को सदियाँ बीत गईं। शायद १९६३ ई० की बात है जब कि मेरे पिता के पिता के पिता की पहली बारात जिसमें कम से कम १३ लाख व्यक्ति थे। एक छोटी-सी कार में जाने वाली थी। उस समय मेरे पिता जी एक दम बोल उठे कि इतने व्यक्ति इस छोटी-सी कार में नहीं आ सकते तो मैंने उसी समय उन्हें झूँठ न बोलने पर एक संक्षिप्त भाषण पिलाया और कहा, "आपको यह स्वर्गीय सत्य बोलते हुये कम से कम तीन ढकेल लज्जा आनी चाहिये। हमारे खान्दान में जहाँ तक मैं समझता हूँ, आपने पहली बार झूँठ बोलने की असफल कोशिश की है। जो भी हो, भविष्य में ध्यान रखिये कि आपकी सन्तानें

झूँठ न बोलें । भला हरिश्चन्द्र और युधिष्ठिर स्वर्ग में क्या सोचते होंगे जो हमारे खान्दान के लोगों के रूप में निरन्तर बारी-बारी से अवतार लेते रहते हैं ।" पिता जी शर्म के कूप में एक दम जा पड़े और बाहर निकल कर कसम खाई कि मेरे पूर्वज दुबारा जन्म लें अगर मैं फिर कभी झूँठ बोलूँ ।

जहाँ से कार चली वह नगर के केन्द्र में था। ६०० मील फी सैकिंड की रफ्तार से वह चल पड़ी। इस तरह लगातार तीन दिन में तीन सेन्टी-मीटर चलने के बाद एक ऐसे स्थान पर पहुँची जहाँ, जहाँ तक निगाह जाती थी, रेगिस्तान ही रेगिस्तान दिखाई पड़ता था पर सामने ही एक ग्लेसियर बह रहा था जिसका दूसरा किनारा ही न था। यकायक पास ही एक चने का वृक्ष दिखाई दिया जिसकी घनी छाया मीलों दूर तक चली गई थी। लम्बी यात्रा से थक जाने के कारण लोगों ने पड़ाव डाल दिया। फिर भोजन बना। ५ रत्ती आटे में २०० मन नमक मिलाकर मीठी पूड़ियाँ तैयार की गई। सैकड़ों युवक पेड़ पर चढ़ गये। मैंने फुलक पर पंजों के बल खड़े होकर देखा तो पृथ्वी अपनी कीली पर घूमती दिखाई दी। उसकी कीली जो कक्षा के साथ ६६½ अंश का कोण बनाती थी साफ दिखाई देती थी। साथ ही वह सूर्य के चारों ओर चक्कर काट रही थी, जैसे लट्टू अपनी आड़ (चोबा) पर तो घूमता ही है, चारों ओर भी घूमता है। जहाँ सूर्य का प्रकाश पड़ रहा था वहाँ रात थी। जहाँ अन्धकार था, वहाँ दिन था। पृथ्वी की दोनों गतियाँ आँखों से देख लीं।

मैं एक टहनी पर लेट गया और चुपचाप गोस्वामी प्रेमचन्द्र का शकुन्तला-गद्य काव्य निकाला और उसमें से उत्तर काण्ड का वह प्रसंग पढ़ने लगा जब कि शैल से शादी करने से पहले कामरेड हरीश को प्रोफेसर सतवलेकर पी-एच० डी० द्वारा शोर मचाने के लिये सिनेमा हाल में भेजा जाता है और जहाँ सहसा उनकी आँखों का शैल जी के नयन-कमलों के साथ दशमलव के चार स्थान तक गुणा हो जाता है।

रात हो गई। भयंकर शीत के कारण हम बोलकर भी एक दूसरे

को समझ न पाते थे, कारण हमारी बातें जम जाती थीं। मैं मलमल का कुर्त्ता पहने था। कुर्त्ते की एक जेब में हिमालय पर्वत पड़ा हुआ था, जहाँ से गंगा, सिन्धु, ब्रह्मपुत्र आदि सरिताओं तथा उनकी सहायक नदियों के उद्गम स्थानों से कल-कल की ध्वनि उठ रही थी। उसके वजन से कुर्त्ते की जेब—मजबूत मलमल की होने पर भी लटकी पड़ रही थी। डर था कि पहाड़ किसी छेद का निर्माण कर बाहर गिर कर न खो जाये। हिमालय को निकाल कर टहनी पर ही तकिये के स्थान पर रख, मैं सो गया।

यथा समय आँखों के दोनों फाटक खुल गये, किन्तु सूर्य भगवान के दर्शन न हुए। दुबारा सोने की कोशिश की, किन्तु नींद कहाँ। घड़ी देखी दोपहर के दो बजे थे। मगर आकाश में तारे चमक रहे थे। अचानक नजर पड़ी कि चन्द्रमा नहीं है और जो गौर से देखा तो वहाँ बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि आदि कोई नवग्रह न था। समझने में देर न लगी कि उन्हीं के साथ सूर्य को भी कोई तोड़ ले गया है जिसके न होने से दोपहर न होने पर भी ये तारे चमक रहे हैं। इन्हें खोजने के लिये मैं उतरने ही वाला था कि तारों के पास आसमान में एक रेल जाती दिखाई दी। वृक्ष पर सोने वाले सभी बराती पीछे पड़ गये कि हमें वहाँ पहुँचा दो। निदान मैंने टौर्च निकाली और उसकी रोशनी उस रेल पर फेंक दी। एक-एक कर सभी उस रोशनी के सहारे वहाँ जा पहुँचे। निस्सन्देह वे चढ़ते-चढ़ते डरते थे कि कहीं मैं रोशनी बन्द न कर दूँ।

नीचे उतरा। वृक्ष की छाया में एक सुविस्तृत नगर बसा था। लगता था कि बराती आँधी पानी में दब गये थे और उन्हीं के ऊपर ये औद्योगिक नगर बस गया। जहाँ घने जंगल थे, वहाँ आबादी नहीं थी। एक गली में जाने के बाद एक कोठरी में झाँका, तो उस समय मुझे जरा भी आश्चर्य न हुआ कि कुछ सुन्दर बच्चे गोली, बाल टोच, खेल रहे थे। गोलियों के स्थान पर नवग्रह पड़े थे। पूछा तो बोले, "इसे तो" सूर्य की ओर इशारा कर कहने लगे, "शाम को ही ईंट मार-मार कर

गिरा लिया और ये शेष ग्रहों को बताते हुए "रात में तोड़ लिये।" शनि महाराज बाल बने थे, कारण उनके चारों ओर एक घेरा सा था जिसके कारण वे लुढ़क न सके और फेंके जाने पर जल्दी ही एक जगह ठहर गये। शुक्र टोच थे, बुध इक्कों और सूर्य फिक्कों। इसके बाद अन्य ग्रह थे। बाल बिनने वाले लड़के ने शनि को उठा लिया और उसके स्थान पर बृहस्पति से जो उसके हाथ में पहले ही से था, टोच को मारने लगा। एक अन्य महाशय बायें हाथ की बीच की अँगुली से चन्द्रमा को बार-बार धरती पर घुमाकर अंट चढ़ा रहे थे। मैंने लपक कर सभी ग्रहों को दाँयें हाथ से समेट आकाश की ओर फेंक दिया। क्षण भर में दोपहर की भीषण गर्मी पड़ने लगी। तभी कुछ लोग मुझे मारने दौड़े, किन्तु मैं उनसे भी तेज भागा। अभी भी बच्चों की जेबों में बीसियों सितारे गोलियों के समान भरे पड़े थे। लपक कर शहर से बाहर पहुँचा। इस समय मुझे सारे नगर-निवासियों पर दया आ रही थी। कारण सभी बराती एक दड़ी बिछाकर सोये थे, जो इतनी बड़ी थी कि अगर इसमें ज़रा भी छेद हो जाये तो थेगड़ी के लिये इतने बड़े कपड़े की जरूरत पड़ेगी कि उसमें धरती भी समा जाये। उसी दड़ी पर यह नगर बसा था। वे लोग मुझे पकड़ना ही चाहते थे कि मैंने दड़ी पकड़ कर खींच दी, फिर क्या था एक अजब शोर मच गया। नगर के मकान-दुकान गिरने लगे, उधर बराती भी निकल आये। खूब घमासान युद्ध हुआ। खून की नदियाँ बह गईं। एक मारा गया, दो घायल हुए, तीन पकड़े गये, बाकी या तो मारे गये या गायब हो गये।

पानी के अभाव में मैंने अपने सबसे छोटे सुपुत्र को बुलाया और उसके गाल पर एक चाँटा मारा। बस उसकी आँखों से धाराप्रवाह आँसू बहने लगे। पल भर में हम लोगों ने स्नान आदि किया और चलने ही वाले थे कि वे लोग भी आ गये जो रेल पर सवार करा दिये गये थे। वे लोग कुछ कहना चाहते थे, बोले, "आकाश में ही पानी से घिरा टापू देखा जहाँ एक आदमी २५ साल का, उसका बेटा ५० साल का और उसका नाती १२५ साल का"......"

"जिसमें नाती जीवित था, बाबा और बाप की उम्र मरते समय की है......"

"नहीं, नहीं" वे मुझे बीच में ही रोक कर बोले, "तीनों जीवित हैं।" एक बात और देखी।

"वहाँ हमारी तरह बच्चे पैदा नहीं होते। अण्डे होते हैं।"

"क्या बकते हो, यह स्त्रियों का लम्बवत (Direct) अपमान है।"

"मगर वहाँ अंडों का उत्पादन केन्द्र पुरुष है। स्त्री वर्ग तो केवल पोपण-कर्त्ता है।"

"तो फिर उनके माँ-बाप और दूध..." मैं अपना प्रश्न पूरा भी न कर पाया था कि एक बहरा चीख उठा "डाकुओं के दल के आने की आवाज़ सुनाई दे रही है।"

"किधर?"

"वो सामने ही तो है" एक जन्म का अन्धा संकेत कर चिल्लाया।

उसी क्षण जो बिना पैर वाले थे वे भाग गये। जिनके हाथ नहीं थे उन्होंने दो-दो तलवारें लेकर मुकाबिला किया। क्यूँकि डाकू लोग संख्या में अधिक थे। अतः वे लोग जिनकी सत्रह पीढ़ियाँ भीख माँगती चली आई थीं और जिनके पास इस समय कानी कौड़ी भी न थी, बुरी तरह लूट लिये गये।

इसके पश्चात हम फिर उस कार में आगे बढ़े।

तो अब आप समझ गये कि मैं कभी झूँठ नहीं बोलता। अब भी जब मैं अपने मकान की छतों में लगी सुदीर्घाकार सोटों को देखता हूँ तो उस चने के वृक्ष की याद आ जाती है जिसकी एक पत्ती की एक नस के कुछ भाग में से ये सोटें बनी हैं जिसकी उस एक पत्ती को हम किसी प्रकार उस बारात में लाद लाये थे।



साहित्य-सर्जन

कुछ लोग नीरोग होना चाहते हैं, दूसरे शब्दों में उनमें नीरोगत्व की कमी आ जाती है, इस नीरोगत्व की कमी को जो दूर कर देता है उसे 'सिविल-सर्जन' कहते हैं। इसी प्रकार कुछ लोग साहित्यिक होना चाहते हैं दूसरे शब्दों में उनमें साहित्यकत्व की कमी आ जाती है, इस साहित्यकत्व की कमी को जो दूर कर देता है उसे 'साहित्य सर्जन' कहते हैं। अब साहित्य-सर्जन का साकार स्वरूप सामने आ गया होगा। सिविल-सर्जन की भाँति 'साहित्य-सर्जन' भी देश भर ही क्या विश्व भर में फैले पड़े हैं।

आप साहित्य-सर्जन का अर्थ साहित्य-निर्माण भी लगा लें तो भी

हमारे उद्देश्य में कोई अन्तर नहीं पड़ेगा।

उधर सामने देखिए। एक कमरा दिखाई पड़ता है। एक ओर सुन्दर सी तनिक बड़ी सी एक मेज पड़ी है। उस पर टीन का एक टुकड़ा पड़ा हुआ है। उस टुकड़े पर लिखा है—'प्रगति-सम्पादक' मेज से लगी कुर्सी पर उन्तीस या तीस वर्ष का एक तरुण बैठा है। श्वेत खादी का कुर्ता पायजामा पहने है, बादामी रंग की सदरी है, सदरी के बटन खुले हैं। बाल लम्बे और लच्छेदार हैं, रंग साँवला है, आँखों पर मोटी कमानी का चश्मा है, ओठों पर पान की लाली है, रूपरेखा बुरी नहीं है। मीठा बोलने वाला है, नाम है सूर्यकुमार 'दीपक'। मेज पर सम्पादक की सभी सामग्री कलमदान, प्रूफ, कुछ किताबें, फोन आदि हैं। एक घड़ी भी रखी है, जिसमें प्रातः के दस बज रहे हैं।

दीपक साहब इस समय प्रूफ पलट रहे हैं। दो-तीन कुर्सियाँ खाली पड़ी हैं, लो, अभी-अभी एक तरुण आकर बैठा है। आप उनसे अवश्य परिचित हैं। ये नगर के उदीयमान तरुण कथाकार श्री नरेश हैं। अभिवादन परिवर्तन के बाद देखिए वे क्या बातें करते हैं।

नरेश——लगभग छः माह पूर्व मैं आप से मिला था। चर्चा प्रसिद्ध कथाकार बनाने की थी।...इधर उधर छिपा कोई सुन तो नहीं रहा।

दीपक——निश्चित रहो कोई नहीं।

नरेश——आपने वायदा किया था कि एक वर्ष तक प्रतिमास मेरे नाम से कहानी प्रकाशित होगी। शर्त के अनुसार मैंने सौ रुपये पेशगी दे दिये थे। छः अंकों के बाद इस मास का क्या हुआ?

दीपक——देखिये जिस लेखक से आपके लिये कहानियाँ ले रहे थे वह आजकल बीमार है। अतएव न लिख सका। शैली न बदल जाये इसलिए अन्य लेखक की कहानी आपके नाम से नहीं दी। आप चाहें तो अगले अंक में 'भूल-सुधार' शीर्षक के अन्तर्गत किसी कहानी लेखक का नाम देकर लिख दें कि अमुक के स्थान पर आपका नाम होना चाहिये पाठक ध्यान दें।

नरेश——नहीं, नहीं आपने ठीक किया है। मैं बाहर जा रहा हूँ।

फिर मिलूँगा। आपकी कृपा से लोग मुझे कथाकार के रूप में जानने लगे हैं, नमस्ते।

× × ×

देखिये अब दूसरे तरुण आये दीपक जी को चैक के साथ एक कविता देकर चले गये। कविता का शीर्षक है 'लाजवन्ती घटा' और उसके नीचे लिखा है, अप्रकाशित काव्य संग्रह 'अधलिखी कलियाँ' से। गत छः माह से 'प्रगति' में आपकी कविताएँ निकल रही हैं और प्रत्येक कविता के नीचे किसी अप्रकाशित काव्य संग्रह का नाम लिखा रहता है। इस प्रकार ये तरुण महोदय कुछ रचनायें लिखकर ही कई काव्य-संग्रहों के रचयिता हैं।

आप समझ गये न कि तरुण नलिनी रंजन 'भ्रमर' हैं।

× × ×

भ्रमर जी के बाद जो युवक (नवयुवक) आये, उनसे आप परिचित नहीं हैं। आप एम० ए० के छात्र हैं और दिखावे में शत प्रतिशत भरोसा रखते हैं। प्रतिक्षण सूटेड-बूटेड रहते हैं। विवाह फैशनेबुल लड़की से तय हो गया है। आपने अपनी मंगेतर को लिखा है कि वे कवि हैं और उसका प्रमाण वे शादी से पूर्व ही देना चाहते हैं। अतएव 'प्रगति' में एक कविता के साथ अपना चित्र निकलवाना चाहते हैं, किन्तु दीपक भी एक घाघ है। वह अगर एक बार में ही चित्र निकाल दे तो ये महाशय दुबारा क्यों आवेंगे और उस दशा में तो बिजिनेस ही ठप्प हो जावेगा। इन मधुर जी ने शिकायत की—श्रीयुत सम्पादक जी, इस मास जिस कविता पर मेरा नाम है उसके साथ यदि आप मेरा चित्र भी दे देते तो बड़ी कृपा होती। ब्लाक आदि के पैसे तो मैंने पहले ही दे दिये हैं। दूसरे आपने वचन दिया था कि मुख पृष्ठ की कविता पर मेरा नाम होगा, किन्तु वह अन्दर की कविता पर है।

दीपक—इस बार क्षमा कीजिये मधुर जी! मेरी अनुपस्थिति में दूसरा ग्राहक अधिक पैसे दे गया और मुख पृष्ठ की कविता पर उसका

नाम पड़ गया। इस मारा आपकी इच्छायें अवश्य पूरी होंगी।

मधुर—अनडाउटेडली ?

दीपक—उतना ही, जितना कि आधुनिका का सन्तान से डरना।

मधुर—थैंक्स।

× × ×

देखिये अब कौन आये। आगन्तुक पर्याप्त प्रौढ़ हैं। काली शेर-वानी और अलीगढ़ कट सफेद पायजामा है। मुख पर कोशिश करने पर सौम्यता आ जाती है। रंग गोरा है।

यही तो हैं जो कवि-सम्मेलन में औरों को नहीं जमने देते। गला क्या है, बोलते बक्खर टपकता है समझ लें कि किसलय कुमार हैं। आइये इन्हें भी देखिये कि एक खाली कुर्सी पर बैठकर क्या बात करते हैं।

किसलय कुमार—यह क्या बदतमीजी है, दीपक साहब !

दीपक—(किसलय कुमार के हाथ से एक पर्चा लेता हुआ) कैसी बदतमीजी किसलय कुमार जी, आप तो बहुत बिगड़ रहे हैं। बैठिये, बैठिये (स्वागत की मुद्रा में खड़ा होता है।)

किसलय कुमार—बिगड़ने की तो बात ही है दो दिन पहले मैं नकद १५) देकर यह कविता ले गया था। कल रात कवि-सम्मेलन था। मेरा नम्बर आने से पहले कवि मृदुल कुमार ने इसीको पढ़कर सुनाया। यह आपके यहाँ कैसा अंधेर है ?

दीपक—(उस पर्चे को पढ़ते हुए) इसमें संदेह नहीं कि कविता आपके नाम के ही अनुरूप है। किसलय जैसे ही कोमल भाव हैं।...

किसलय कुमार—(बीच ही में) किन्तु उस खूसट मृदुल ने तो कविता की रेड़ ही कर दी। गधे का गला लेकर जन्म लिया था। कविता के कोमल पद कितने कटु लग रहे थे। काश कि कविता को मैं ही पढ़ता। बड़ा अभ्यास किया था। (सहसा क्रोधित होकर) लेकिन यह सब आपके कार्यालय की बदमाशी है।

दीपक—इसमें भी कोई शक नहीं। (बैठकर) परन्तु किसलय

कुमार जी किसी अनैच्छिक कार्य को देख नाराज होने से पहले इस कार्य के कारणों को तो देखो। यह तो आप जानते ही हैं कि स्थानीय कवि-सम्मेलन के कारण काम तनिक अधिक आ गया। अतः शीघ्रता हुई और इस शीघ्रता में यह थोड़ी सी असावधानी हो गई...।

किसलय कुमार—थोड़ी सी...

दीपक—(बिना रुके) दूसरी गड़बड़ी यह हुई कि हमारा तीन साल का एक्सपर्ट शेखर नौकरी छोड़ कर चला गया। कम्बख्त ने यही काम शुरू कर दिया है। वह कविता भी कर लिया करता था, अतः ऐसे अवसरों पर सुविधा होती थी वह इन बातों का ध्यान भी बहुत रखता था। उसके स्थान पर जो युवक आया है, तुकें तो वह भी जोड़ लेता है। किन्तु समय अभी कम हुआ है काम भी नया है। अतः यह गड़-बड़ी हो गई। एक माह पहले तो इस युवक ने ऐसी गड़बड़ी की थी कि आपकी गड़बड़ी कोई मायने नहीं रखती।

किसलय कुमार—क्या ?

दीपक—कुछ अधिक दाम लेकर किन्हीं साहब को सुमित्रानन्दन पंत की कविता दे दी। बिना यह ध्यान किये कि उस सम्मेलन में स्वयं पंत पधारेंगे।

किसलय कुमार—बड़ी भयंकर भूल की।

दीपक—बारीक भूल यह की कि उसमें कहीं भी कुछ नहीं बदला। बस पल्लव से फाड़कर लय समझाई और टरका दिया।

किसलय कुमार—पन्त जी ने अवश्य पकड़ लिया होगा।

दीपक—जी हाँ, यों किसी काव्य-संग्रह को पढ़ता कौन है जो पकड़े, किन्तु पंत जी तो स्वयं वहाँ साकार थे। किन्तु गायक हमारा प्रौस्पैक्टस भी ले गया था और जान पड़ता है कि उसने सम्पूर्ण प्रौस्पे-क्टस का पारायण भी किया था। यहाँ तक कि महीन टाइप में छपे 'चंगुल से बचने के नियम' भी पढ़ डाले। तभी तो उसके पकड़े जाने पर एक नियम की पाबन्दी की।

किसलय कुमार—किस नियम की पाबन्दी की। और वह प्रौस्पे-

ाट्रा आपने मुझे क्यों नहीं दिया। मैं भी तो बढ़िया गायक हूँ और ापका पर्मेनेन्ट (नियमित) ग्राहक हूँ।

दीपक–अभी मँगवाता हूँ। हाँ, तो उसने कविता पढ़ने के तुरंत ाद ही जब पन्त जी का मुखारविन्द खुलते देखा तो कह दिया कि ह कविता स्वनाम धन्य श्री पन्त जी की है, मैं अपनी तो इस समय ा नहीं सका, किन्तु आप महानुभावों को भी निराश नहीं करना ाहता था।

किसलय कुमार—बहुत सुन्दर, बहुत सुन्दर। किन्तु हो सकता था के पंत जी जभाँई ही ले रहे हों।

दीपक—बिल्कुल ठीक यह नियम में था, किन्तु गायक घबरा ाया। खैर, कवि-सम्मेलन तो आज भी है। शायद कल आप कविता ाहीं सुना सके।

किसलय कुमार—पुरानी सुनाई थी, किन्तु आज अवश्य···

दीपक—ठीक है। स्वयं आपको कविता दूँगा। मयंक ट्यून बनानें में बड़ा होशियार है। खूब सिनेमा देखता है न।

(थोड़ा सा रुक कर) किसलय कुमार जी, आप थोड़ा सा अमर क्यों नहीं हो जाते ?

किसलय कुमार—(चौंकते हुए) थोड़ा सा अमर···

दीपक—जी हाँ, थोड़े से रुपये अवश्य लगेंगे, एक खण्ड काव्य लेखवा लो।

किसलय कुमार—(मुस्कराकर) रुपये की तो चिन्ता नहीं है···

दीपक—(बीच ही से) तो फिर थोड़े से ही क्यों, पूरे ही अमर हो जाओ।

किसलय कुमार—एँ···

दीपक—जी हाँ, महाकाव्य लिखवा कर। विषय मेरा सोचा हुआ है। लिखने वाला तैयार है। मुझे कोई अमर होने वाला नहीं मिल रहा था। बस, वर्ष भर लग जायेगा।

किसलय कुमार—(थोड़ा सा उछलकर) क्या यह सम्भव है ?

दीपक—क्यों नहीं ? इस युग में क्या सम्भव नही है। पैसा हो तो सभी कुछ सुलभ है। चाहे कवि बन जाओ या कथाकार, आलोचक हो जाओ या उपन्यास लेखक। भारत में ही क्या सभी देशों में सभी प्रकार से लेखक बिकाऊ होते हैं।

किसलय कुमार—तो फिर रुपयों की चिन्ता न करो। महाकाव्य लिखवाना शुरू करवा दो। हाँ, एक उपन्यास भी मेरे नाम से धारा-वाहिक निकलना चाहिये।

दीपक—अवश्य। उपन्यास के बाद एक नाटक। साहित्य के इति- में लिखा जायेगा सर्वतोमुखी प्रतिभा वाले श्री किसलय कुमार'''

किसलय कुमार—(शरमाते हुए) बस, बस, दीपक साहब। आप तो व्यर्थ ही प्रशंसा कर रहे हैं। आप वास्तव में क्रांतिकारी व्यक्ति हैं। 'प्रगति' पत्रिका के द्वारा आपने न जाने कितनों की आशाएँ पूर्ण की हैं। न जाने कितनों के सपने साकार हो रहे हैं। आपने सिद्ध कर दिया कि कलाकार जन्मजात ही नहीं होते। परिश्रम से असम्भव भी सम्भव है।

दीपक—स्वप्न साकार होने की बात न पूछिये। एक देवी जी हैं। एक कवि पर मुग्ध हैं। कवि महोदय चाहते हैं कि किसी कवियित्री से विवाह करें। अब यह हमारा काम है कि उन देवी को कवियित्री भी बनावें।

किसलय कुमार—(खड़े होते हुए) तो अब मैं चलता हूँ। हाँ, कविता तो दिलवाइये जरा अप्रकाशित होनी चाहिए।

दीपक—किन्तु दो घण्टे बाद कष्ट कीजिए। स्पेशल दूंगा इस बार। (उठते हुये) उस महाकाव्य का प्रमुख रस क्या हो ? शान्त वीर या शृंगार अथवा आज कल का प्रयोगवादी रस।

किसलय कुमार—जैसा आप उचित समझें। वैसे मेरी उमर अधिक है किन्तु कलाकार का दिल तो सदैव जवान रहता है।

दीपक– समझ गया।

दोनों दरवाजे तक साथ-साथ आते हैं।

किसलय कुमार—(एक पाँव दरवाजे से बाहर रखकर) देखिये ऐसा न हो कि चीज़ें तैयार हो जायें तो अमर कोई और हो जाये। मेरा मतलब है कि नाम किसी और का डलवा दें।

दीपक—आप निश्चिन्त रहिये। जब आपने पूरा तांगा किया है तो दूसरी सवारी क्यों बैठेगी? (थोड़ा ठहर कर जरा धीमे से) एक बात और यदि आप दस रुपये मासिक दें तो इस अंक से सम्पादक मण्डल में आपका नाम भी डाल दूँ।

किसलय कुमार—भाई, दस रुपये तो बहुत हैं। पाँच रुपये मासिक दे सकता हूँ।

दीपक—कोई बात नहीं पाँच रुपए मासिक सही। मैं आपका नाम सलाहकार समिति में रख दूँगा।

किसलय कुमार—नमस्ते।

दीपक—दो घण्टे बाद अवश्य आइये, नमस्ते।

× × ×

अब बताइये। आया न एकांकी के बदलते दृश्यों का आनन्द। मैं न कहता था कि 'साहित्य-सर्जन' का आप कोई भी अर्थ लगा लें, हमारे उद्देश्य में कोई अन्तर नहीं पड़ेगा।





हमने खाट पर हजामत बनवाई

स्नान के प्रमुखतम भेद हैं स्थानीय, पार्विक, एवं सामयिक। स्थानीय के उदाहरण हैं काशी स्नान, हरिद्वार स्नान या त्रिवेणी स्नान। पार्विक स्नान विख्यात है। पार्विक स्नानों के ही घरोंदे में अवधि सीमित स्नान के अण्डे मिलते हैं जैसे दुर्गापूजा स्नान, या कार्तिकी स्नान, किन्तु प्रचलतम भेद सामयिक है जिसके तीन प्रभेद हैं—दैनिक, साप्ताहिक एवं मासिक। यों सामयिक के भेद उतने ही हैं जितने पत्र-पत्रिकाओं के प्रसव काल। दैनिक स्नान वाले वे लोग होते हैं जिनका स्वभाव धर्म-भीरु होता है, जिन्हें नित्य के पूजा-पाठ में अखण्ड विश्वास होता है या जिनकी पतिव्रता, चिर पवित्रा पत्नी बिना स्नान कराये भोजन के आसन को नितम्ब-स्पर्श ही नहीं करने देती। साप्ताहिक स्नान करने वालों की बिरादरी क्लर्कों की होती है जिन्हें इतवार के दिन के अतिरिक्त उसी प्रकार समय नहीं मिलता, जिस प्रकार विद्यार्थी को मार्च मास के अतिरिक्त हनूमान की भक्ति को अवकाश नहीं मिलता। मासिक स्नान करने वाले वे लोग हैं जो तीन दिन तक लोगों को यह

गलत विश्वास दिलाते हैं कि उनके घर कोई मर गया है, किन्तु पहली तारीख का वेतन उनकी मनहूसियत को बदल छैला बना देता है। इस दिन ये नये कपड़े पहनते और प्रथम श्रेणी में चाय पीते हुए सिनेमा देखते हैं। यदि अन्य परिस्थितियाँ वैसी ही रहें तो नियमानुसार ज्यों-ज्यों समय का अवकाश बढ़ता जाता है, बिरादरी छोटी होती चली जाती है। कुछ लोग होली-दिवाली ही नहाते हैं और एकाध जन्म और मृत्यु के दिन ही इस काम में समय नष्ट करते हैं। कभी-कभी लोग परिस्थिति से विवश होकर एक-दूसरे की बिरादरी में घुस बैठते हैं।

अस्तु, हम साप्ताहिक स्नान करने वालों की बिरादरी की शोभा बढ़ाते हैं, इसलिये नहीं कि इतवार को ही हमें समय मिलता हो; पर जहाँ लोग पानी के अभाव में प्यासे मरते हैं उस देश में हम स्नान द्वारा पानी का सबसे बड़ा दुरुपयोग करते हैं। सरकारी आँकड़ों के अनुसार भारतवर्ष में एक दिन के स्नान के पानी से पूरी रबी की फसल की सिंचाई हो सकती है और फिर हमारी तो समझ में ही नहीं आता है कि देह को निर्वस्त्र कर उस पर पानी फैलाने में क्या तुक है? जो भी हो, श्रीमती जी को दफ्तर जाने का समय बजाय १० बजे के ८ बता रखा है। भोजन भगवान के दर्शन आफिस में ही करते हैं। इस प्रकार सुबह पुस्तकालय में पिछले दिन के थके समाचार-पत्र रूपी पहलवानों को दो घण्टे तक पछाड़ते हैं।

गत रविवार की बात है। आठ बज गये थे। नाक के नगाड़े की मदिर मन्द ध्वनि तरंगें प्रातःकालीन शीतल-समीरण में तैर रही थीं, कि श्रीमती जी ने रजाई (हम गर्मी के दिनों में भी रजाई ओढ़ के सोते हैं, ताकि ठण्ड लगने का सहज प्रमाण दे सकें और स्नान से बच सकें) फेंक दी, "इस मुखाकाश पर घिरी बदरिया तो छटवा आओ।"

हमारी श्रीमती जी साहित्यरत्न पास हैं। प्रायः रूपकातिशयोक्ति में बात करती हैं। हमने चेहरारविन्द पर हाथ फेरा। निस्सन्देह काँटे बढ़ गये थे। हजामत बनवाये भी साल का चौथाई भाग बीत चुका था; बनवाना आवश्यक था, किन्तु हमने सिर ढक लिया।

श्रीमती जी हमारा ध्वन्यार्थ समझ गई। आज सेलूनों पर तो राशन के जमाने की भीड़ लगी होगी। इस दशा में दोपहर के तीन बजे तक नहीं आ सकते थे। उधर तीन बजे के मैटिनी शो में जाना अनिवार्य था। श्रीमती जी चली गई, किन्तु दो मिनट भी न बीते थे कि फिर उठो-उठो, देखो-देखो की आवाज़ लगी। हमने उछलकर गवाक्ष में जो गर्दन फँसाई तो श्रीमती जी से बोले, "हम तो समझे थे कि तुम्हारा भाई आ गया। यह तो नाई है जो खाट पर हजामत बना रहा है।"

"यही तो मैं दिखा रही थी। जाओ बनवा आओ।"

"बिगाड़ देगा" हमने गर्दन खुजाई।

"अब दुबारा कोई देखने नहीं आ रहा, जाओ भी।"

"फिर भी कई लोग हैं, दो घण्टे लगेंगे।"

"मैटिनी शो तो मिलेगा! शौच फिर जाना। लाइन में लग जाओ।

"अगर शुभ कार्य के बीच में ही विघ्न पड़ा"

"अजीब हो, लवणभास्कर लेते जाओ। फाँकते रहना।"

"इस मेहमान के प्रथम रूप का आना तो अपने हाथ है पर इस रूप में जाना नहीं। लवणभास्कर महोदय इन्हें बैठाने और सुलाने में तो शीघ्रता कर सकते हैं, किन्तु जाने की ट्रेन लेट नहीं कर सकते।" कहते हुए मेरे साथ श्रीमती जी भी हँस पड़ीं।

"उई अब जाओ भी। हम बच्चे को नौ माह पेट में रोकती हैं और तुम हो कि······"

आप यह न समझें कि हम इसका उत्तर नहीं दे सकते थे। असल बात ये थी कि हम उस दिन का मजा किरकिरा नहीं करना चाहते थे। अतः धोती सँभालते अखबार उछालते चल दिये।

पिछले जन्मों का संचित पुण्य समझो या श्रीमती जी का सौभाग्य। लोग अखबार पर झपटे और हम खाट पर रपटे। प्रतीक्षक लोग हँसे, हम मुस्करा कर झेंपे। नाई ने चारों ओर निगाह घुमाई, जैसे गोष्ठी

के सभापति की तरह पूछता हो, 'कोई आपत्ति' और दो पल बाद नाई महाशय ने हमारे बालों में पानी डाल उस विकट अनुभव का श्रीगणेश किया। लगता था जैसे कंधों पर उबटन लगा रहा हो। अगर साक्षात् हम हजामत न बनवा रहे होते तो यही समझते कि कोई बाल-समूह पकड़ कर हमें त्रिशंकु के आकाश-पथ पर ले जा रहा है।

नाई गर्दन पर मशीन चला रहा था। हम धीमे से चीखे, "बाल क्यों नोंचते हो? लगती है।"

"नोंच नहीं रहा बाबू, मशीन चला रहा हूँ।" और वह मशीन चलाने लगा।

हमें विश्वास नहीं आया। हम फिर बोले, "क्या मजाक करते हो? हमारे बाल सफेद नहीं हैं, क्यों नोंचते हो?"

नाई जोर से हँस पड़ा, "बाबू जी! आप भी खूब मजाक करते हैं" और उसने मशीन हमारे सामने कर दी। मशीन को देखकर हम घबरा गये। लकड़ी काटने के आरे के समान उसके दाँते थे और बीच में तीन दाँत भी नहीं थे, पर ओखली में सिर दिया जा चुका था। ध्यान बटाने के लिये हमने इधर-उधर सोचना आरम्भ किया।

खाट कुछ अजीब प्रकार की थी। बीच में खूब झोल थी। पहले तो मेरी पाल्थी उल्टे इन्द्र धनुष सी लगी रही, किन्तु दो घड़ी में ही दोनों पैर खाट के छेदों में से निकलकर धरती से जा टकराये। उधर नाई का टूटा-सा बक्स (भगवान जाने किस युग का था) सरक-सरक कर मेरी पाल्थी से आ लगता था जैसे विधवा का मन विवाह की ओर करता हो और क्रूर समाज की तरह वह नाई उसे फिर अपने स्थान पर रख देता था। मेरी गर्दन से कपड़ा नहीं लपटा था, विश्वास रखिये, वह किसी पुरानी दड़ी का टुकड़ा था जिसमें कई छेद राज्य में व्यभिचार की तरह हो रहे थे। मन एक बारगी सोचकर सिहर उठा कि इसी दड़ी के ऊपर इसके बाल-बच्चे......"

आगे सोचना बेकार समझ नाई की शकल देखने लगा। झाड़ू सी मूँछें और आँखों में नींद। मुझे भय लगा कि कहीं यह सो न जाय

और नींद में उस्तरा नाक पर रखकर बाँयें हाथ की हथेली न मार दे। थोड़ी देर बाद हमें दृढ़ विश्वास हो गया कि वह अवश्य सोयेगा।

डरते-डरते पूछा, "क्या रात भर सोये नहीं हो?"

इससे क्या बाबू जी! रसिया सुने थे रात भर पर अब थोड़े ही सोऊँगा। (फर्स्ट क्लास बाल लो) "और उसने कंघा लेकर बाल छाँटने आरम्भ किये। हम भी किसी और धुन में लगे, पर दो मिनट बाद ही चीखे, "क्या करते हो, कान के ऊपर के बाल काटते हो कि कान काटते हो?" और हम कान टटोलने लगे कि साबुत है या नहीं।

"खून नहीं निकला बाबू जी! एक दफे तो इस कैंची के भिच्चा में हर एक का कान आता ही है।"

हमें विश्वास हो गया कि इसकी आँखें अवश्य ही झपकी थीं। बोले, "तुम पहले मुँह धोलो।"

"कैसी बातें करते हो बाबू जी! फैन्सी कैंची है।" और वह कैंची पल भर को दिखाकर फिर कान के ऊपर ले गया, किन्तु इस पल भर में ही देख लिया कि कैंची की धार पुलिन में पाँच छः बनारसी घाट बने हैं और वह कंघा जिसमें गिनती के कुछ दाने थे जैसे पटपरी पगडंडी पर तीन-चार खजूर के तने खड़े हों।

सहसा हमने पूछा, "तुमने माली का काम कबसे बन्द किया?"

नाई चौंका, "आपने कैसे जाना बाबू! कई साल हो गये?"

हे भगवान्! हमने तो कैंची देखकर अन्दाज भिड़ाया था। उसके चलाने का ढंग ही ऐसा था कि बाल न काट कर छोटे-छोटे पौधे काट रहा हो!

थोड़ी देर बाद हम एक और मुसीबत में फँसे, जी ने चाहा कि उठ कर चल दें, पर मझधार में थे। नाई दोनों पाटियों पर खड़ा होकर बाल छाँट रहा था। सूँय-सूँय की ध्वनि निरन्तर गुंजायमान थी। हमें पल-पल पर भय हो रहा था कि नासिका-द्रव क्षरित न हो। हम सर को कभी इधर और कभी उधर उल्टी घड़ी के पेंडुलम की तरह से हिला रहे थे। नाई शायद अर्थ को समझ गया, "आप सिर ठीक रखिये बाबू

जी ! मुझे बारहमासी जुकाम है ।"

"सोओगे तो नहीं ?" हमने शंका प्रकट की ।

नाई उत्तर न देकर पूर्व स्वर-संधान में लगा रहा । और हम ईश्वर से मन ही मन प्रार्थना कर रहे थे कि हे कृपा-सिन्धु ! नासिका अरण्य में बाल-वृक्ष-समूह सरित-प्रवाह को रोक लें ।

सहसा हमें लगा कि नाई को झपकी आ गई है और अब वह गिरने ही वाला है । हमने तत्काल खाट की पाटी का सहारा लिया कि हम नीचे और खाट हमारे ऊपर ! नाई एक ओर खड़ा था तब हमें बड़ा क्रोध आया । लगा कि खाट ने हमें अमेरिकन फ्री स्टाइल में पछाड़ दिया है । (स्मरण रखना चाहिये कि हमारी पाल्थी के पैर खाट पार कर धरती पर खेल रहे थे) और नाई रैफरी जैसा हँस रहा है । बात यह थी कि खाट का एक पाया टूटा था और मुड़ा हुआ था । हम जो झुके तो बड़ों की नकल करने के लिये वह भी झुक गया । पास बैठे लोग क्षण भर हँसे और पुनः बातों में लग गये । किसी प्रकार सात-आठ ईटें लगाई और हम पूर्व स्थिति में विराजमान हुए तभी एक भारी भरकम आदमी सामने के दरवाजे से निकला और सीधा हमसे बोला, "बाबू जी ! पाये के दाम देने पड़ेंगे । खाट हमारी थी । नाई लिये नहीं फिरता था ।"

"क्यों देने पड़ेंगे ? और लोगों ने भी तो बनवाई है ।"

"इससे क्या हुआ ? इलाज औरों का हुआ सही, पर मरीज मरा तो आपकी दवा से है ।"

"और जो नाई कमा रहा है ।" हमारी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या कहना चाहिए ।

"यह बेचारा गरीब है क्या देगा ?"

"हमने नाई की ओर देखा । वह ऊँगता सा बोला, "एक रुपये दस आने में आवेगा पाया बाबू जी !"

हमें क्रोध श्रीमती पर आया और शपथ ली कि खाट पर हजामत कभी न बनवायेंगे । ताव में बोले, "हजामत तो पूरी करो ।"

"अभी लो दो मिनट में, अब रह ही क्या गया है ।" और सचमुच

ही थोड़ी देर बाद वह बुरुस को साबुन से रगड़ने लगा ।

"अबे ! चन्द्रावली का झूलना कह न ?" मुड़कर नाई ने किसी से कहा और उसके हाथ ने साबुन भरा बुरुस हमारे मुँह में मारा ।

हमारा क्रोध बेकार था । कोई दफ्तर नही था । मरे से स्वर में बोले, "चन्द्रावली का झूलना फिर सुन लेना । हमारे मुँह में बाल नहीं हैं ।" और साथ ही लगा कि सेलखरी मिलाकर बे छना चून हमारे मुँह में आ गया है ।

अब उसके हाथ चलने लगे थे । हम बोले, "तुमने शायद मकानों में कलई भी की है ?"

"आपतो ज्योतिषी हैं बाबूजी ! कैसे जाना ?"

हमने बिना हाथ मारे करम ठोक लिया । वह बुरुस था ? निश्चय ही वह घिसी हुई कूँची न था तो कूंची का ही कोई निकटतम रिश्तेदार था । मूँज जैसे बालों में पंखें की डण्डी उरसी हुई थी और झाड़ू की तरह धोती की चीर से बँधा था ।

और जब नाई ने उस्तरा उठाया तो हमसे नहीं रहा गया, "कहीं तुम बढ़ई तो नहीं हो और नाई का काम करने लगे हो ।"

"कैसी बातें करते हो बाबू जी ! कभी लकड़ी काटता तो अवश्य था ।"

"यह तुम्हारा उस्तरा है या पेड़ की शाखा काटने का बाँक है ।"

उत्तर में नाई ने एक गहरी सांस ली । "जमाना गुजरा बाबू जी ! हम क्षत्रिय थे । राज्य की रक्षा करना हमारा धर्म था । हाथ में तलवार लेकर गर्दन काटते थे और अब उस्तरा लेकर गर्दन के बाल काटते हैं । कितनी बड़ी फर्म थी, अब तो खोंमचा रह गया है ।"

हमने अब सोचना बन्द कर दिया था । श्रीमती जी पर क्रोध प्रकट करने के लिये शब्द टटोलने लगे ।

जब नाई ने बाल साफ करने को बुरुस उठाया तो हम खड़े होकर चीख उठे, "रहने दो तुमने बूट पालिस भी की है ।"

"की तो है बाबूजी पर..."

"लो पाये के दाम और तुम्हारे भी" हमने दो रुपये का नोट पटका। उफ़् दूसरा बुरुश ! दूर से ही दीखता था कि दो-दो पैसों में बिल्ली वाली पालिश दस बरस इसी बुरुश से हुई है।

बढ़िया हजामत का प्रमाण देने के लिये नाई ने शीशा दिखाना चाहा पर उसको देखते ही क्या ? सैंकड़ों टुकड़े बिना तरतीब जुड़ रहे थे। मानो आधुनिक कला का कोई नमूना था।

हमने तपाक से लोगों से बिखरा अखबार छीना और श्रीमती जी पर झपटने चले। दरवाज़े में पैर रखा ही था कि पीछे से आवाज आई, "बाबू जी !"

मुड़कर देखा, नाई था। क्रोध में पूछा, "क्या है।"

"बाबू जी ! मुझे सच ही अफसोस है। आपने पाये के दाम कम भी न किये। अगर आपके यहाँ कोई टूटी खाट हो तो अगले इतवार को आपके यहाँ……"

उफ् तो यह पहले से ही योजना थी। हम दोनों हाथ उठाकर भभके, "जाओ पहले तुम सोओ।"

नाई फिर उसी खाट पर हजामत बना रहा था और हम श्रीमती जी पर बिगड़ते समय भी सोच रहे थे कि आज यह नाई अवश्य सोयेगा और किसी की नाक पर उस्तरा रख कर बायें हाथ की हथेली मारे बिना नहीं रहेगा।